॥ हरिः ॐ ॥

શ્રીમોટાવાણી

૫-૬

પૂજ્ય શ્રીમોટા
હરિ:ૐ આશ્રમ-સુરત

॥ हरिः ॐ ॥

श्रीमोटा-वाणी [५]

दिनांक ८-८-१९७४ के दिन अहमदाबाद में श्री के. एम. कांटावाला साहब के घर पर श्रीमोटा के साथ श्री अनुपराम भट्ट (Ph.D.) ने की हुई पावन सत-चर्चा की ध्वनिमुद्रित वाणी

श्रीमोटा की दृष्टि

• समाज लक्ष्मी से उन्नत नहीं होगा •

हमारे देश में, हमारे समाज में, ये मर्दानगी, साहस, हिम्मत यह नहीं होंगे तो हमारा देश उन्नत कैसे होगा ? देश उन्नत केवल लक्ष्मी से कभी नहीं होगा। साहब, लक्ष्मी साधन है, जरूरी है, किन्तु लक्ष्मीवाले के पास गुण और भाव नहीं होंगे तो वे स्वच्छंदी हो जायेंगे। तो इस लक्ष्मी का दुरुपयोग होनेवाला है।

(वसंतपंचमी उत्सव-दिन प्रवचन, दिनांक ३०-१-७२, वडोदरा)

• समाज में गुण भाव के अकाल का निवारण करो •

लोग अनाज-पानी के अकाल की चिंता करते हैं, किन्तु सचमुच तो समाज में जो गुण और भाव का अकाल पड़ा हुआ है, उसके लिए मुझे काम करना है। उसके लिए प्रजा की सहानुभूति नहीं होती। इससे मेरा काम मुश्किल बनता है। समाज में गुण और भाव का अकाल पड़ा है, उसके निवारण के लिए प्रयत्न करना वह समाज की सच्ची सेवा है।

(अकाल के समय के एक प्रवचन से) **— मोटा**

: अनुवाद :

भास्कर भट्ट **रजनीभाई बर्मावाला 'हरिः ॐ'**

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

❑ प्रकाशक : हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र महादेव मंदिर के पास में,
जहाँगीरपुरा, सूरत-३९५००५.
दूरभाष : (०२६१) २७६५५६४, २७७१०४६
भ्रमणभाष : ९७२७७ ३३४००
E-mail : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© हरि:ॐ आश्रम, सूरत-३९५००५

❑ संस्करण : प्रथम प्रत-१०००

❑ प्राप्तिस्थान : (१) हरि:ॐ आश्रम, सूरत-३९५००५. वेबसाईट

❑ **मुख पृष्ठ :** मयूर जानी, मो. : ९४२८४०४४४३

❑ **अक्षरांकन : अर्थ कॉम्प्यूटर**
२०३, मौर्य कॉम्प्लेक्स, सी. यू. शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटेक्स, अहमदाबाद-३८० ०१४
भ्रमणभाष : ९३२७०३६४१४

❑ **मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.**
सिटी मिल कंपाउन्ड, कांकरिया रोड,
अहमदाबाद-३८० ०२२ दूरभाष : (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिः ॐ ॥

• निवेदन •

(प्रथम संस्करण)

श्रीमोटा क्वचित् ही प्रवचन करते थे । उनकी पावन वाणी यानी उत्सव प्रवचन या कहीं किसी स्वजन के यहाँ घर में निजी बातचीत हुई हो और उस स्वजन ने ध्वनिमुद्रित कर ली हो वह वाणी । ऐसी ध्वनिमुद्रित वाणी को हमारे ट्रस्टीमंडल के एक ट्रस्टी श्री रजनीभाई बर्मावाला ने अक्षरशः सुनकर उसकी पाण्डुलिपि अथाह परिश्रम से तैयार की थी और मई १९९२ से मार्च १९९६ दरमियान चौदह पुस्तकों की एक श्रेणी का प्रकाशन मुख्यतः स्वजन श्री यशवंतभाई ए. पटेल (बापु), अहमदाबाद के आर्थिक सहयोग से कराया था । उन सभी पुस्तकों का पुनः प्रकाशन का कार्य अब हमारे ट्रस्ट ने संभाल लिया है ।

श्रीमोटा की पावन बोधदायक वाणी का लाभ बिन-गुजरातीभाषियों को भी मिल सके, उस हेतु से उसका अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में करने का आयोजन हमारे ट्रस्ट द्वारा किया गया है ।

श्रीमोटा जैसे भगवान के अनुभवी पुरुष की वाणी सरल लोकभाषा में होते हुए भी बड़ी मार्मिक है और उनके मुख से निकला एक-एक अक्षर, शब्द गहन आध्यात्मिक रहस्यवाला होता है । इससे साहित्यिक दृष्टि से यह वाणी ठीक नहीं लगेगी । आपश्री कहते थे के 'मेरे लेख में अल्पविराम को भी आगेपीछे करना नहीं । और कितनी ही बार एक ही एक बाबत का पुनरावर्तन होता हो तो उसे भी वैसा ही

रहने देना । इस आज्ञा को ध्यान में लेकर श्रीमोटा की यह ध्वनिमुद्रित वाणी आपश्री जैसे बोले हैं, वैसे ही मुद्रित की है । इसमें कोई सुधार नहीं किया गया है ।

इस श्रेणी के असल गुजराती पुस्तकों के पुनः प्रकाशन के कार्य दरमियान भी हमारे ट्रस्टी श्री रजनीभाई बर्मावाला ने पू. श्रीमोटा की पूरी ध्वनिमुद्रित वाणी फिर से सुनकर यह लेख अक्षरशः वाणी अनुसार है यह मिलाकर ट्रस्ट के ट्रस्टी की हैसियत से उनका फर्ज पूर्ण किया है, इससे उनका आभार मानना आवश्यक नहीं है ।

इस पुस्तक का मुद्रणकार्य चतुरंगी मुखपृष्ठ सहित श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि., अहमदाबाद ने पू. श्रीमोटा के प्रति अत्यंत भक्तिपूर्वक, प्रेमभाव से किया है । हम उनका खूब-खूब आभार मानते हैं ।

समाज का विशाल वर्ग श्रीमोटा की इस वाणी द्वारा अपना जीवनविकास कर सके और श्रीमोटा के आध्यात्मिक विज्ञान को सरलता से समझ सके ऐसी शुभ भावना के साथ यह पुस्तक समाज के करकमलों में अर्पण करते हैं ।

॥ हरिः ॐ ॥

दि. १४-१-२०१४ **— ट्रस्टीमंडल**

वि.सं. २०७०, उत्तरायण हरिः ॐ आश्रम, सुरत

॥ हरिः ॐ ॥

• विषय-सूचि •

१. सभी समझ पहले अंदर होती हैं १४
२. अभी हमारे में प्रकृति Predominant है १५
३. भगवान के मार्ग में दंभ नहीं चलेगा १६
४. भक्ति लगे तो भगवान का भाव टिके १७
५. जागे हुए नर का सेवन करो १८
६. भगवान के भाव से आप अपने को नापो १९
७. सद्‌गुरु के प्रति भाव विकसित करो २०
८. चेतन की सभानता के लिए कोई साधन करो २१
९. पद्य रचनाएँ —Autobiography Of My Sadhana है २१
१०. सद्‌गुरु को चिपके हुए ही सद्‌गुरु का खून करते हैं २३
११. या तो साधना करो या तो सद्‌गुरु को चिपको २४
१२. भगवान पाप-पुण्य देखते नहीं २५
१३. पैसे कमाना आसान है, भक्ति करना कठिन है २६
१४. भगवान को कोई लेबल नहीं है २७
१५. कर्म करते भगवान की सभानता रखो २८
१६. स्वार्थ में किसी का Negativeपन हम देखते नहीं २९
१७. भगवान का नाम लेकर छलनेवाले से नास्तिक अच्छे हैं ३०
१८. मैं पैसे का पूजारी नहीं, भगवान का पूजारी हूँ ३१
१९. भगवान का अनुभव अंदर होता है ३२

२०. सद्‌गुरु घर बैठे सिखाते हैं ३३
२१. सद्‌गुरु को हमारे में जीवित करने की रीति ३४
२२. गुजरात के लिए मुझे प्रेम है ३६
२३. मनादिकरण को भक्ति में लगाओ ३७
२४. भगवान को कोई आकार नहीं,
आकार सब सभी कल्पित हैं ३९
२५. प्रेमभक्तिपूर्वक के हुक्मपालन से
साधना में गति मिलती है ३९
२६. भक्त ज्ञानी भी होता है और ज्ञानी भक्त भी होता है ४२
२७. भगवान का भाव जगाने के लिए साधना ४३
२८. भगवान के मार्ग के साधन–
अभय, नम्रता, मौन और एकांत ४४
२९. पहले कठिन साधना, फिर भगवत्‌-कृपा ४५
३०. भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन का अनुभव ४६
३१. ज्वालामुखी समान दहकती जिज्ञासा प्रगटाओ ४७
३२. भगवान के नाम से सब मिलता है ४८
३३. भगवान की समग्रता का अनुभव
हमारे लिए असंभव है ४९

॥ हरिः ॐ ॥

• श्रीमोटा का अप्रकट पत्र •

श्री दोरास्वामी जो श्रीअरविंद के निजी स्नेही और प्रेमी थे । उनके पुत्र का युद्ध में अवसान होने के बाद पूज्य श्रीमोटा ने उनको लिखा हुआ पत्र ।

प्रभु की रचना में जो अत्यंत भयंकर लगता हो, वह भी उनके विकास के हेतु लिए ही होता है । **भारत के समग्र समाज के घोर तमसयुक्त जीवन को जगाने, उठाने के लिए ऐसी भयंकर मुसिबतें, मुश्किलें, आफतें, दुःख ऐसा सब अनिवार्य है ।** भगवान हमारा कल्याण किस तरह करना चाहते हैं, उसकी हमें कोई सूझबूझ नहीं होती है ।

प्रभु पर चाहे श्रद्धा, विश्वास किसी को जरा सा भी न हो, फिर भी प्रभु कुछ थोड़ा ही उसे छोड़ देते हैं ? जीवन कुछ अभी जितना और जैसा है उतना ही होता है ऐसा कुछ नहीं । जीवन तो पहले भी था और अभी भी है और फिर भी होगा ही । जीवन के अनंत पहलू हैं । और उस प्रत्येक पहलू में उनके दर्शन का उसका अनुभव होने की आवश्यकता रहती ही है । सोने को या लोहे को आकार देने के लिए उसे जिस भयंकर गरमी से गुजरना पड़ता है और उसे भारी से भारी हथौड़ें का मार निदाई पर सहना पड़ता है । ऐसी उसकी स्थिति वह भी उसे उसका आकार देने की ही भूमिका होती है । किन्तु उसका हमें जीता-जागता भान प्रकट हुआ होता नहीं है । हम जीवन

की भयंकर से भयंकर परिस्थिति में फँस जाते हैं, और उससे जीवन जो भारी अंघड़ों से पटक-पटक कर जिस दुःख के कुएँ में गिरकर वहाँ जो उसकी भयंकर निराशाजनक दशा प्रकट होती है, वैसी दशा में कहीं भी कोई भी आश्वासन दिल को काम में आता नहीं है। दिल-दिल से दिल में एकदम अनाथ अकेला-अकेला हो जाता है। और तब जीवन एक भाररूप भी कइयों को लगे वह स्वाभाविक है।

प्रत्येक जीवन जिसे समझ उस-उस काल में जिस तरह की समझ प्रचलित होती है, उस-उस प्रकार की समझ उसके जीवन के आगे के भाग में उसी तरह ही प्रवर्तीत होती है, ऐसा कुछ नहीं है।

कुदरत के कायदे में हरएक में परिवर्तन हुआ ही करता है। परिवर्तन वह तो उसका सनातन अधिमय कायदा है। ऐसे परिवर्तन द्वारा ही कुदरत प्रत्येक को आकार देती है। जगत में कुछ भी परिवर्तित हुए बिना नहीं रह सकता है। अंधेरा चाहे जितना गहरा होता है, फिर भी प्रकाश फिर प्रकट होनेवाला होता ही है। इतना ही नहीं, किन्तु गहरा अंधेरा होता ही है। किन्तु जिस प्रकार वह परखा जाता नहीं। वह प्रकाश परखा जाता नहीं। उसमें कुछ प्रकाश का दोष होता नहीं है। हम प्रकाश के सम्बन्ध मैं ज्ञानभक्तिपूर्वक स्वीकार और सभानता की भूमिकावाले होते नहीं है।

हरएक जीव की जिस-जिस समय पर जो-जो समझ की स्थिति प्रकट होती है, उसमें से यदि मुक्त होने की उसे अदम्य

प्रेरणा जागे तो वैसी समझ की दशा से भी वह प्रभुकृपा से मुक्त जरूर हो सकता है । अन्यथा तो मनुष्य वैसी की वैसी उसकी वैसी ही दशा में पड़ा ही रहा करेगा और जो उठे ही नहीं, जागे ही नहीं, जो जागकर उठकर प्रयत्न करे ही नहीं, उसे तो कौन उठा सके और जगा सके ! प्रभु तो सदैव हमारे साथ ही रहे हुए होते हैं और हमारे जीवन में सराबोर बुने हुए ही होते हैं ।

समग्र समाज को उस तरह व्यक्ति को भी वह उसे आकार देने की प्रक्रिया में होते हैं ।

समाज के जीवन में जब-जब गहरा तमस फैला हुआ होता है, तब-तब स्वयं जब आलस्य छोड़कर बैठा नहीं हो सकता, तब-तब कुदरत ऐसे समाज को अपार मुश्किलों, घोर वेदना, दुःख, समस्याओं इत्यादि जीवन में ला-ला कर उसे जागृत करने का प्रयत्न करती है । उसी तरह व्यक्ति का है ।

किसी भी शरीरधारी चेतनात्मक आत्मा के साथ किसी अनजाने ऐसे कारण से प्रभुकृपा से किसी भी तरह मददकर्ता हो चुके होते हैं तो वैसा हमारे जीवन में अंकुरित हुए बिना नहीं रह सकता है । हम ज्ञानभक्तिपूर्वक का स्वीकार और सभानता की भूमिकावाले यदि नहीं हो सकते तो इससे भी वह बैठा नहीं रह सकता ।

वह तो जीवन में अनेक उलटपुलट कराया ही करेगा । **उस**की जगाने की, उठाने की और प्रयत्न कराने की रीति वह

उसकी स्वयं की अलग और स्वतंत्र होती है । जो हमारी समझ के चौकठे में बराबर आती ना हो, उसके कारण वह कुछ भी यथार्थ नहीं ऐसा तो नहीं कह सकते । एक बार हमारा काम यदि ऐसे के साथ हो गया तो हम चाहे कितने हिले-डुले नहीं और चाहे थोड़ी देर ऐसा मान लो कि उससे विमुख हो चुके हो तो भी **वह** तो **उस**का काम करता ही रहनेवाला है । वह तो अनेक प्रकार के अलग-अलग आघात दे-देकर अंत:करण की भूमिका को जागृत करने का प्रयत्न करते ही रहनेवाला है । वह प्रभुकृपा से हमारे अनजाने में भी हमें किसी न किसी रीति से मंथन करवाते रहनेवाला है । इस प्रकार के अंधेरे के संपूर्ण आधार को भी उलटपुलट कर ड़ाले वैसे प्रसंग भी जीवन में प्रकट होनेवाले ही हैं । जहाँ तक हम उसे ज्ञानभक्तिपूर्वक भाव से प्रत्युत्तर देते नहीं हो जाएँगे, वहाँ तक ऐसी प्रकट हुई प्रक्रिया को अब हम किसी भी उपाय से रोक नहीं सकेंगे । ऐसा सब हमें पसंद हो या नहीं, फिर भी हमारी रुचि या अरुचि का प्रश्न रहता नहीं है ।

कई बार तो उस मानव को दु:ख के गर्त में डालकर भी आकार देता है । कई बार आघात-प्रत्याघात द्वारा भी आकार दे सकता है । कई बार तो कुछ उच्च कक्षा पर साधना की भूमिका में प्रकट हुए **जीव** को भी घोर तमस की घाटी में प्रवेश करवाकर वहाँ उसे पड़ा रहने देकर और उस तरह भी उसे तैयार करते हैं । यह विधान शायद विरोधी लगे, फिर भी वह अनुभव की हकीकत है । किसी-किसी **जीवों** को

वैभवविलास की स्थिति में प्रकट करके उन-उन **जीवों** को तैयार भी उसके द्वारा वह करता होता है । कई **जीव** को तो जीवदशा की नकारात्मक tendency में प्रकट करके भी वह वैसे **जीव** का कल्याण कर सकता है सही । ऐसे सभी किस्सो में जो कोई **जीव** को मिली हुई परिस्थिति के बारे में हेतु की सभानता प्रकट होती है, वैसे **जीव** का उठाव जल्दी होता है ।

ऐसे चेतनानिष्ठ – चेतन प्राप्त किए हुए शरीरधारी आत्मा में हमारे हृदय के ज्ञानभक्तिपूर्वक के हेतुमूलक श्रद्धा, विश्वास यदि जीतेजागते हुए प्रकट हो गये हो तो वैसे **जीव** का कल्याण निश्चित है ।

मनुष्यमात्र के जीवन में भगवान स्वयं भाग ले ही रहा होता है । किन्तु उसके प्रति उसे (मनुष्य को) सभानता प्रकट हुई होती नहीं है । वही एक मनुष्य के लिए सब से बड़ा दोष है । जड़ जैसी चीजों पर वनस्पति, प्राणीमात्र पर श्रीप्रभु का – चेतन का असर तो होता ही है । मनुष्य भगवान को भजता नहीं होता । इतना ही नहीं, परंतु श्रीभगवान का जो शत्रु बना हुआ है या विरोधी होता है अथवा तो जो उसका अस्तित्व बिलकुल स्वीकार नहीं करता है, उसमें भी श्रीप्रभु भूमिका अदा कर रहे होते हैं ही । जड़ पर, वनस्पति पर, प्राणी पर, इन सब पर सूर्य, चंद्र का असर है ही और बारिश भी उन पर गिरती है । यह तो इतना स्पष्ट है कि मनुष्य की बुद्धि को कबूल करना पड़े वैसा है । मनुष्य को भी प्राणीमात्र को, वनस्पति को भी प्रकाश, हवा, पानी बिना चल ही नहीं सकता और उससे ही

उनका जीवन टिकता है । पोषण पाते हैं । जीवन के लिए वे अत्यंत मूल्यवान हैं; अति महत्त्व के हैं । फिर भी मनुष्य के दिल में उनका कोई भी महत्त्व जागता ही नहीं है । यह तो दीये के समान खुला हुआ है । हवा, तेज (अग्नि), पानी, जमीन (पृथ्वी) बिना तो मानव को, प्राणी को, वनस्पति को कभी भी चल ही नहीं सकता । पल-पल पर तो उन-उन सब की जरूरत है । जिसके द्वारा यह सब जीवित रहता है । फिर भी उन सब में मनुष्य ज्यादा अज्ञान है । फिर भी मानव के दिल में उसके प्रति कदरदानी के साथ ज्ञान कभी भी जागा होता नहीं है । बल्कि उसके प्रति, सदा सर्वदा बिलकुल अज्ञान है । ऐसा होने पर भी भगवान की करुणा तो अपरंपार है ।

जीवन का विकास होने के लिए चेतन के प्रति सभानता प्रकट होनी यह अत्यंत आवश्यक कदम है । उसके बिना विकास कभी भी संभव नहीं है । **हम *उस*के संबंध में रहा करते हैं, लेकिन वह रहता नहीं है ।** जीवन में चेतन को सक्रिय रूप से कार्य करते यदि हमने अनुभव किया हो तो चेतन के प्रति हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं, एकाग्रता से केन्द्रित रूप में सतत जीते-जागते पिरोये हुए होने चाहिए । तो ही जीवन में भी हम वैसा जरूर अनुभव कर सकते हैं ही ।

ऊपर जो वर्णन किए हुए ऐसे शरीरधारी आत्मा हैं, उनके सिर पर किसी भी प्रकार का ऋण तो होता नहीं है । उनको हुई मदद चाहे बाद में तो अज्ञानता से हुई हो, उस मदद का वैसे-वैसे आत्मा स्वीकार करते हैं और वैसी उनको हुई मदद

उनका भगवान स्वंय भगवान के भक्त को हुई मदद का ऋण चुकाये बिना रहता नहीं है । भक्त तो कुछ भी वापस दे सके वैसा नहीं है । उसका तो जो सब है, उसके भगवान पर ही छोड़ देता है । भगवान की बदला देने की रीति उसकी अपनी अनोखी होती है । भगवान के गढ़न का ढंग भी उसका अपना स्वतंत्र बिलकुल निराला, अगम्य, अलग और अनोखा होता है । भगवान स्वयं अनेक अलग-अलग रीति से मनुष्य को गढ़ता है । उसकी गढ़ने की क्रिया मनुष्य के मन, बुद्धि तो अनेक कठिन गांठो से, पूर्वग्रहों से और संक्षिप्त अज्ञानयुक्त समझों से मर्यादित हुई होती है । ऐसी बुद्धि से मनुष्य भगवान को या उसकी कृपा को या भगवान की मनुष्य को गढ़ने की कला को कभी समझ सकने की संभावना में होता ही नहीं है । ऐसा होने पर भी भक्त को या ऐसे शरीरधारी आत्मा को की हुई किसी भी प्रकार की मदद कभी निष्फल नहीं जा सकती है । कब कैसे फल देगी उसकी रीति तो उसकी स्वयं की ही है । मदद की रीति से मदद की तरह ही फल दे वैसा भी होता नहीं है । हरएक व्यक्ति के विषय में वह अलग-अलग ही होनेवाली है ।

– मोटा

• उद्‌घोषक •

दिनांक ८-८-१९७४ के दिन श्री के. एम. काँटावाला साहब के वहाँ (अहमदाबाद में) श्रीमोटा ने श्री अनुपराम भट्ट साहब ने पूछे हुए प्रश्नों द्वारा हुए सत्संग का यह वृत्तांत इसके बाद दिया जा रहा है ।

• सभी समझ पहले अंदर होती हैं •

श्रीमोटा : हाँ, कहो साहब, कुछ अच्छा । ए भई, जरा सब शांत रहना । अब यह एक सत्संग का विषय चल रहा है, इससे थोड़ी शांति रखोगे तो थोड़ा मुझे इस दमे में और बोलने में मदद हो सकेगी । कहिए साहब ।

जिज्ञासु : मोटा, आप कहते थे, अद्वैत अंदर और द्वैत बाहर । ऐसी आप बात करते थे ।

श्रीमोटा : नहीं, मैं बात ऐसी करता था कि जो कुछ अनुभव होता है । द्वैत या अद्वैत कुछ भी कहो । संसार-व्यवहार के किसी भी प्रसंग का । कुछ भी जो हमें मालूम होता है, समझ होती है, वह पहले अंदर होती है । क्योंकि जिसके द्वारा जो समझना है, वह मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् । उसके पीछे की बात सब करना फालतू है । किन्तु यह तो सब समझ सकते हैं कि मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् इनके द्वारा इस संसार की सभी घटना हमें समझ में आती हैं । वह जो समझ आती है, वह पहले अंदर ।

देखो तब, जो भी कुछ दृश्यमान हुआ इन्द्रियों से, ज्ञानेन्द्रियों से, कर्मेन्द्रियों, वो दस। और फिर मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्। इन सब से जो कुछ हुआ, वह अंदर होता है। बाहर नहीं। अंदर होने के बाद, स्फोट होने के बाद कि यह फलाना व्यक्ति है। ये मेरे ठाकोरभाई हैं। यह मैंने व्यक्त किया। किन्तु पहले अंदर हुआ। यह .... वह यदि आपकी बुद्धि में कबूल होता हो तो वही नियम उसमें भगवान की बात, चेतन की बाबत में लागू पड़ती है। इस चेतना का अनुभव पहले अंदर होता है। लेकिन वह अंदर।

• अभी हमारे में प्रकृति Predominant है •

अब जो चेतन का अंदर जो अनुभव होता है, वह एक पूरा अलग विषय माँगता है। अंदर का अनुभव ऐसे ही नहीं होगा। ये हम अभी हमारे में प्रकृति Predominant है। यह प्रकृति Predominant है। वे प्रकृति के गुणधर्म हैं और प्रकृति के विषय में है, यह सभी समझ उस समझ के अनुसार जो कुछ हमें लगता है। अंदर.... पहले अंदर। फिर बाहर व्यक्त होता है। लेकिन वह.... वह हरएक मनुष्य को अलग-अलग। एक ही व्यक्ति आपको अच्छा लगता हो। वही मनुष्य दूसरे को बुरा लगे। वही मनुष्य दूसरे को परोपकारी लगे। एक मनुष्य के अनेक पहलू। यह कबूल हमारी बुद्धि करे। वे अनेक पहलूओं का अलग मनुष्यों को अलग-अलग अनुभव होता है। क्योंकि उसी तरह वह परिचय में आया है।

तो चेतन के संबंध में भी ऐसा ही है । चेतन के संबंध में । चेतन ऐसा नहीं है । चेतन को कहो या उस संसारी मनुष्य जैसे अनेक पहलू हो वह बात नहीं है । किन्तु मनुष्य जो है । जो उसकी भक्ति करता है । वह उसके प्रश्न अलग-अलग । उसकी समझ अलग-अलग । उसके गुणधर्म अलग-अलग । उसकी प्रकृति अलग-अलग । इससे वह उसकी साधना करते-करते जब द्वन्द्वातीत या गुणातीत होता है । अर्थात् प्रकृति अग्रभाग से निकल जाय, गौण हो जाय और भगवान का भाव । भगवान अग्र भाग में नहीं रहता है । प्रारंभ में बाह्य साधना करते-करते भगवान की भावना । भावना जिसे कहें । भाव अग्र भाग में हो । और भाव अग्र भाग में हो तो दिन में कितने घंटे में, कितने समय तक आपमें वह रहता है । वह आपको समझ आती है न ?

• भगवान के मार्ग में दंभ नहीं चलेगा •

इस संसार में कोई स्वार्थ में हो तो वह स्वार्थ कितना समय आपके दिमाग में रहता है, वह आपको समझ में आता है । कोई आपकी शिक्षा का विषय समझ में आता है । कोई आपकी दुनियादारी की, संसार की बात आपको समझ आती है कि कितने समय तक आपके मन में रहती है । **और यह भगवान का भाव या तो भगवान के बारे की हकीकत यदि आपके मन में टिकती न हो तो आप समझ लेना**

कि इस मार्ग के आप प्रवासी नहीं हो । गलत बात है । निकल जाओ जल्दी । दंभ मत करो । सब चलेगा इस भगवान के मार्ग में । दंभ नहीं चलेगा । Complete transaprent Frankness, Sincerity, Honesty and Devotion ये चार वस्तु इसमें चाहिए । अन्यथा नहीं चलेगा आपका । दूसरा बिलकुल कुछ भी नहीं चलेगा ।

तब एक साधन को पकड़कर आप कितना समय रहते हो, यह तो परीक्षा करो । इस मार्ग पर चलने निकले हुए मेरे बेटे, लेकर जुटे हुए । कोई कर नहीं सकते । आप प्रयोग करो । एक साधन को लेकर आप देखो कि कितने समय तक, कितने काल तक पाँच, छ, सात घंटे तक— दो घंटे, चार घंटे, कितने घंटे तक एक साधन को लेकर चिपककर आप रह सकते हो । अच्छा, वह छोड़ दो ।

• भक्ति लगे तो भगवान का भाव टिके •

ये तो भगवान का भाव कैसे टिके उस पर बोलता हूँ । तब.... तब भगवान का भाव अपने आप नहीं टिकेगा । भक्ति लगेगी । अब तो भक्ति कैसे लगे ? अनुराग हुए बिना तो लगेगी नहीं । राग अलग । अनुराग अलग । आपके संस्कृत शब्द में, डिक्षनरी में खोज लेना । राग से अनुराग ज्यादा है । दूसरे सामान्य मनुष्यों को समझ में नहीं आएगा यह । किन्तु राग की अपेक्षा अनुराग बढ़ता है । उसकी मात्रा भी भारी । असरकारक भी अनुराग भारी । तो उसका अनुराग लगना चाहिए ।

• जागे हुए नर का सेवन करो •

अब वे साधन तो साले प्रापंचिक तो नहीं होंगे हमसे । तब किसी जीवित जागृत नर का संग करो । जागते नर का सेवन करो । कबीर साहब ने कहा है यह । तो कौन ऐसे को पड़ी हैं ? जागते नर को । उसके मन में कोई अनेक मुझे पाँव पड़ते हैं । गुरु करते हैं । बाप, ऐसा करो, वैसा करो, फलाना करो । मुझे सब । यह वेश बहुरूपिया का मैंने लिया है । यह मुझे मालूम पड़ता है । किन्तु मेरी सास के आप कितने काल इस गुरु को रखते हो तुम्हारे मन में ? इस चौबीस घंटे के अंदर । इन चौबीस घंटे के अंदर कितने घंटे रखा ? कितनी मिनट रखा ? उसका हिसाब तो थोड़ा निकालो । मुझे बताओ ।

मैं कबूल करुँगा और मैं गलत होऊँगा तो जगत में जाहिर करूँगा कि मैं झूठा हूँ । दयारामभाई ने एक बार गाया है, *''मैं झूठा जगदीश लाज मेरी रखोगे तो रहेगी ।''* वह किसी भी प्रसंग में उसने कहा हो, किन्तु दयारामभाई ने गाया है सही । *'मैं झूठा जगदीश लाज मेरी रखोगे तो रहेगी ।'* मैं ऐसा नहीं कहूँगा । मेरे भगवान के पास मैं कहूँगा कि आज तक मैंने तुझे छला है, ऐसा मैं कहूँगा । मेरे भगवान को साफ दिल से कहूँगा कि इतने सारे के इस मनुष्य ने इस काल तक मेरे बारे में अनन्य भाव से और उसके बाद भी कुछ हुआ नहीं, इसलिए मैं झूठा । और मैं स्वयं को किसी भी काल में छुपाऊँगा नहीं । बिलकुल नहीं छुपाऊँगा । लेकिन यह मेरी बात सच है । (बीच में एक भाई को: भाई वहाँ बैठो आप)

• भगवान के भाव से आप अपने को नापो •

वह कितना समय आप एक साधन लेकर पकड़ लेते हो । वह तो आप स्वयं देखो । अनेक मुझे कहते हैं ***मोटा,*** **आपने ऐसा नहीं किया । ऐसा नहीं किया । अरे मरे हुए, साले *मोटा* को जाने दो न । आप कौन हो ? आपको स्वयं को इसमें, आपको भगवान के मार्ग पर जाना हो तो दूसरों के आश्रय लेना छोड़ दो । आप स्वयं कितने मजबूत हैं ? आप स्वयं कितना कर सको ऐसा हो ? आपमें स्वयं में कितनी शक्ति है ? आपमें स्वयं में आगे बढ़ने के लिए तमन्ना ज्वालामुखी के समान कितनी प्रकट हुई है, वह आप देख लो ।** यह आपको मालूम ।

साला क्रोध आये तो मालूम पड़ता है । मोह होता है तो मालूम पड़ता है । स्वार्थ लगता तो मालूम पड़ता है । उसकी सभानता, उसकी सभानता आपको रहती है । स्वार्थ की किसे सभानता नहीं रहती ? मुझे कहे । आगे आकर । यदि स्वार्थ की आपको सभानता रहती है तो भगवान के भाव की ना रहे ऐसा । ऐसा आपको यह कैसे हो सके ? किसी भी सायकोलोजीस्ट को लाओ मेरे पास । यदि स्वार्थ की आपको सभानता रहती है तो भगवान का भाव है । तो कि वह तो **मोटा** पलभर थोड़ी देर रहती है । अच्छा भाई, कबूल है । भले थोड़े पल । हाँ, किन्तु चौबीस घंटे के अंदर उसका जोड़ तो करो कि पाँच मिनट रही, दो मिनट रही ऐसा करके

पूरे दिन के चौबीस घंटो में कितना समय रहती है ? उसके ऊपर से आप नाप निकालो कि इस मार्ग के आप प्रवासी हो या नहीं?

• सद्‌गुरु के प्रति भाव विकसित करो •

अब साधन ना हो सके तो सद्‌गुरु को चिपको । सद्‌गुरु वह पाँच तत्त्वों का– शरीर का बक्सा है । यह बात सच है । किन्तु *''सन्तो जागते नर का सेवन करो ।''* किन्तु आपके पास कोई परीक्षा नहीं है कि यह जागता है या मेरी सास का सोया है । यह कामी है या क्रोधी है या फलाना है । यह आपके पास कोई परीक्षा थरमोंमिटर उसके पास है नहीं । तो किस तरह समझना ? कोई निमित्त संजोग से आ मिला हमें । और फिर आपको आपके पास बुद्धि रखो । कुछ भावना रखो । समझ लो । उसके काम समझ लो । उसे समझ लो । परंतु उसे एक मनुष्य के रूप में आप समझे । किन्तु आपको भाव नहीं बैठेगा उस पर । आपको यदि उसे सद्‌गुरु स्वीकार करना हो तो भाव रखना पड़ेगा । वह किस दिन कहकर निकला है नारियल देने लेकर । वरयात्रा निकाल कर निकला नहीं है कि मुझे सद्‌गुरु करो भाई । किन्तु यदि आपको करना हो तो भाव आपको विकसित करना हो तो भाव आपको विकसित करना पड़ेगा । अन्यथा छोड़ो माथापच्ची । यह बात पक्की है ।

• चेतन की सभानता के लिए कोई साधन करो •

तो चेतन की सभानता हमारे में रहे इसके लिए या तो एक साधन करो और उस साधन में कितने काल तक आप टिके रहते हो उसका अभ्यास करो। आपको यदि लगे कि दिन के चौबीस घंटे में चार घंटे तक भी उस साधन में आप टिक रहे हो। तो उस मनुष्य के लिए संभावना है। आगे बढ़ा सकेगा बाद में। समय उसे बढ़ाते जाना चाहिए। पंद्रह, सोलह घंटे तक आप ले जाओ। बाकी का काम भगवान करेंगे या सद्गुरु आपके करेंगे। फिर आगे शक्ति नहीं है अपनी। दूसरे किसी की होगी। मेरी नहीं है।

मैंने यह अनुभवपूर्वक समझ समझ कर, दिमाग में बुद्धि दौड़ा कर मैंने किया। पंद्रह, सोलह घंटे तक ले गया था। फिर मेरे जाने का संभव न था। बहुत प्रार्थना भी की है। बहुत मथन किया है। अलग-अलग साधन गुरुमहाराज ने बताये थे, वे करके दिखाये हैं। ऐसा नहीं कि नहीं। करके दिखाकर उसके परिणाम सहित जानकर पक्का करके ये किया है।

• पद्य रचनाएँ—Autobiography Of My Sadhana हैं •

ये सब मेरे जो गीत लिखता हूँ। वे Autobiography Of My Sadhana हैं। आज नहीं उसे समझ पड़ेगी। परंतु सौ वर्ष बाद कोई मनुष्य अभ्यासी निकलेगा। उसे समझ पड़ेगी। मैंने लिखा है इसलिए नहीं। परंतु मानवीय हेतु से

लिखता हूँ। **और मुझे ये गद्य से पद्य मुझे ज्यादा आसान और सरल लगता है।** उस एक आठ पंक्तियों में एक भाव दिखा देना। दूसरी आठ पंक्तियों में दूसरा भाव। यह उसमें मेरे से होता नहीं है।

वह भले ना बिके। उसकी मुझे चिंता नहीं है। परंतु इस काल में मैं पैसा खर्च करता नहीं हूँ। कोई मुझे पैसे देते हैं और मैं छपाते रहता हूँ। इन्दुकाका। (श्री इन्द्रवदनभाई शेरदलाल, गुरुकृपा गेस्ट हाउस, टाउन होल के पीछे, एलिसब्रिज, अहमदाबाद-३८०००६) उसके घर में भरकर रखते हैं। कभी भी बिकेंगे तो बिकेंगे। नहीं बिकेंगे तो मेरे जीवन की यह एक बड़ी बात है। वह मुझे कह देना है। मरते-मरते अनेक लोग कह गये हैं। वह मैं तो पराये के पैसे से करता हूँ। मेरे घर के पैसे तो कि आश्रम के पैसे भी खर्च नहीं करता हूँ। और मुझे मिलते हैं पैसे। मिलते हैं। भगवान की कृपा से देते हैं। तो मैं छपाते रहता हूँ। Autobiography Of My Sadhana। **उसे पढ़ेंगे लोग।** तो मैं तो लस्टम-पस्टम लिखता हूँ। क्योंकि मैं अनेकों के जीवन में घनचक्कर जैसा काम किया हो। मूर्खतापूर्ण। घनचक्कर जैसा। वह साला साहित्य की दृष्टि से शब्द योग्य न हो, परंतु मैं उसकी परवाह नहीं करता। मुझे साहित्य के साथ क्या ? साहित्य में मैंने ओनर्स लिया था साहब। बी. ए. में तो संस्कृत में तो .... प्रतिशत मार्क लाता था। तो चाहूँ तो सुंदर साहित्य मैं लिख सकता हूँ। परंतु मेरा वह काम नहीं है। मुझे तो

गुरुमहाराज का हुक्म पालना है कि सादे में सादा, सरल में सरल, अनपढ़ मनुष्य भी समझ सके वैसा लिखना। तो परीक्षा भी करता हूँ। इससे ये सब लिखता हूँ।

• सद्गुरु से चिपके हुए ही सद्गुरु का खून करते हैं •

परंतु मूल बात तो यह है कि भगवान का भाव हमारे अंतर में प्रकट हुए बिना वह भगवान की awareness, भगवान की सभानता कभी आ सकेगी impossible। या तो आप साधन करो और साधन को चौदह-पंद्रह घंटे तक ले जाओ। वह एक मार्ग। दूसरा मार्ग है। या तो सद्गुरु करो। तो उसमें प्रेमभक्तिपूर्वक करो। यह तो चाहे उतने खून कर देते हैं। **ये मेरे साथ चिपके हुए को मैं देखता हूँ। कि चाहे उतने खून कर दे। ऐसा सोचते हैं कि भविष्य में मैं तो उसके सामने भी ना देखूँ। मुझे अनुभव है। परंतु मैंने ऐसा किया नहीं है। मेरा धर्म है चाहने का। कि सभी को चाहता हूँ।**

मैं ऐसा नहीं कहता कि जिसे अनुभव कर लेना हो वह कर ले। जीते-जीते। ऐसे मनुष्यों के पास गया हूँ कि जिन्होंने मेरे लिये बहुत उलटा सोचा है। अन्यथा रूप से तो कुछ कह सकते नहीं। आज मैं तो मुझे कोई संकोच नहीं है। मैं तो कह सकता हूँ। परंतु उस व्यक्ति के लिए कहना ठीक नहीं। अविवेक कहा जाएगा न। उसके लिए, किसी के लिए कहना सब में, जाहिर में, अविवेक कहा जाएगा। मेरा धर्म, मेरे शरीर का धर्म गृहस्थाश्रमी है। इससे मुझे पालन करना चाहिए।

किन्तु फिर भी कई बार वह मर्यादा लाँघ जाता हूँ। और मुझे परवाह भी नहीं है। और कोई कुछ भी क्या मान ले ! **साले को मान लेने दो न। मेरे बाप का क्या जानेवाला है ? उसके बाप का जाएगा।**

• या तो साधना करो या तो सद्‌गुरु को चिपको •

इससे मूल बात मैं कहता था कि भगवान का भाव हमारे में टिके तो दो बात। या तो आप साधना करो, और साधना करते-करते सद्‌गुरु को धारण करो। **भगवान के मार्ग पर जाना हो या सद्‌गुरु ना हो और साधना करनी हो तो हरएक कर्म होते-होते हरि की सभानता अग्र भाग में आप में रहनी चाहिए। तो ही वह योग। तो ही वह भक्ति, तो ही वह ज्ञान। अन्यथा नहीं साहब। सभानता *उस*की पहली। कर्म बाद में, कर्म बाद में।**

तब वह सभानता रहते-रहते ये सब कर्म हो और समर्पण हो तो सहज रूप से समर्पण होगा। उसे करना नहीं पड़ेगा। जैसा हमारे पास कोई माँगता हो और पैसे दें। यह तो हमारा धर्म है। देना ही चाहिए। तब हमें अपने आप सूझ जाता है। यह तो सब **उस**का ही है। और **उस**को ही देने का है। तब भगवान की सभानता। वह वैसे ही नहीं रहेगी साहब।

जैसे बड़े हुए और परिचय में आते-आते बालक परिचय में आते-आते सब के संबंध में आता है। परिचय बिना नहीं आएगा। पागल हुआ मनुष्य सब के परिचय में नहीं आएगा।

क्योंकि मन की ऐसी स्थिति नहीं है। तब हमें भी ऐसा परिचय होना चाहिए। साधना के संबंध में। उसका अभ्यास होना चाहिए। अभ्यास में बहुत समय जाना चाहिए। तब वह हुए बिना कुछ भी बनना संभव नहीं है।

या तो सद्गुरु में रखो। किन्तु सद्गुरु में मन रखो तो वह पा घंटा, आधा घंटा नहीं साहब। वह भी नहीं चलेगा। सतत चाहिए। गीताजी का मूल ..... गीताजी की मूल .... सातत्य है। सातत्य के बिना नहीं चलेगा इसमें। जिसे जाना हो वह जाय। और न जाना हो तो भगवान कहता नहीं कि मेरे साथ तुम आओ।

• भगवान पाप-पुण्य देखते नहीं •

उसने तो रख दिये हैं हमें खुले। स्वतंत्र हो। पाप करने के लिए और पुण्य करने के लिए। और यह भूल जाओ। इतने सारे लोगों ने गप्पे मारे हैं। शास्त्रों ने मारे हो तो भले और संन्यासियों ने मारे। भगवान पाप-पुण्य देखता ही नहीं। कर्म के परिणाम हैं, यह बात सच। किन्तु भगवान के कारण है, यह बात गलत। भगवान पाप-पुण्य बिलकुल देखता नहीं है साहब। ये मैं आपको मेरी हकीकत कहता हूँ। अन्यथा हमने कितने ही जन्म में कैसे कर्म किये होंगे कि जिसके बारे में आज जाने तो थरथरा उठेंगे। यह करुणा है भगवान की। और वह देखता नहीं पाप-पुण्य। अन्यथा तो वह स्वीकार ही नहीं सकता। अनेक पापियों का स्वीकार किया है। भक्त.....

और कैसे पावन हो गये हैं ! भक्तों में शिरोमणि हो गये हैं । भगवान पाप-पुण्य देखता नहीं है । यह भूल जाओ आप । और तो भी उसकी भक्ति तो करो भाई !

• पैसे कमाना आसान है, भक्ति करना कठिन है •

परंतु कौन करे ? राम तेरी माया । वह करना सरल नहीं है । **अभी पैसे कमाना सरल है । इस दुनिया में पैसे कमाना अभी सरल है । किन्तु भगवान की भक्ति करना सरल नहीं है । कठिन है । वह नहीं होगी । स्वार्थ होगा । पति को चाह सकोगे । बेटे को चाहोगे, मा को, बाप को, इस संसार को चाहेंगे लोग । गले तक और सिर तक और पाँव तक । नसनस में, रगरग में है वह । परंतु भगवान तो कहे साला, मेरा साला भले एक तरफ पड़ा रहे । भगवान के लिए ऐसा किसी को है नहीं साहब ।**

भगवान के लिए वैसा भाव नहीं है । जितना संसार के लिए है । प्रतिष्ठा के लिए, आबरू के लिए । ये जो है वैसा भगवान के लिए किसी को है नहीं । और भगवान को फिर पाने के लिए, अनुभव करने के लिए हम बाते करें वह मिथ्या है । वह भगवान को हमारे द्वारा छलने जैसा है । यह नहीं होगा । यह नहीं हो सकेगा । किसी काल में नहीं हो सकेगा । जीताजागता होता तो डंडे ठोकता । मेरे गुरुमहाराज अनेकों को कहता था । मेरे गुरुमहाराज अनेकों को डंडा मारता था । **साले को न मारे तो करे क्या उसे ? उसे तो गला**

दबाकर मार डालूँ । कहते हैं । ऐसा ऐसा करता है । तो उसके कर्म वह देखता था ।

• भगवान को कोई लेबल नहीं है •

इससे..... किन्तु भगवान तो बहुत दयालु है । बहुत कृपालु । उसके नाम सब दिये हैं । ये सहस्त्रनाम या जो कहो वह । वह कुछ भगवान ने नहीं दिये हैं । वह तो लोगों ने किसी को दयालु लगा । किसी को करुणालु लगा । किसी को समत्ववाला लगा । किसी को साक्षीभाववाला लगा । यानी जिसको जैसा लगा वैसा उसने लिखा । ऐसे उसके नाम पड़े । उस भगवान को नाम नहीं है । कोई उसे सहस्त्रनाम कहे । भले कहे सब । और हमारे में हमारे में किताब भी है । आज ही मुझे किसी ने भेंट दी । विनोबाजी ने लिखी हुई विष्णुसहस्त्रनाम ! वह कोई भगवान ने कोई अपने मेरे ये नाम मेरे ये है । मैं ये हूँ । ये हूँ । ऐसा भगवान ने कहा नहीं है । यह तो लोगों ने उसे सजा दिया है । मैंने कहा मेरे साले, आप लेबल क्यों लगाते हो उसे ? उसे कोई लेबल नहीं उसे । किन्तु कौन समझे भाई ? तो भी ठोकते हैं लेबल । भगवान को कोई लेबल नहीं है ।

किन्तु उसे अंदर अनुभव करने के लिए दो ही साधन । या साधना और या तो सद्‌गुरु । साधना सद्‌गुरु के बिना हो सकती है । किन्तु वहाँ भगवान को आगे रखना चाहिए । वह धीरे-धीरे रख सकोगे । धीरे-धीरे रख सकोगे ।

जैसे-जैसे गरज लगती जाय न । साधना में जहाँ तक आपको स्वार्थ जागता नहीं वहाँ तक नहीं होगा । चाहे जितना अभ्यास करोगे । आज ढाई घंटे, फिर पाँच मिनट जोड़ी, दस मिनट, पंद्रह मिनट...

• कर्म करते समय भगवान की सभानता रखो •

कर्म essential है साहब । साधना भी करना हो । चाहे जितने महात्मा लोगों को मैं बात जानता नहीं हूँ । मैं तो मेरी बात जानता हूँ कि कर्म essential है । **कर्म करते-करते भगवान की awareness आपको रहनी चाहिए । भगवान की स्मरण-भावना रहनी चाहिए । कर्म करते-करते ।** क्योंकि यह संसार ही कर्म से– कर्म का प्राधान्य है । इस संसार में किसी क्षेत्र में– ज्ञान के क्षेत्र में भी कर्म का प्राधान्य है । किन्तु तब उसे कर्म नहीं रहता । तब उसे भक्ति रहती है भगवान की । किन्तु कर्म है उसे । कर्म नहीं है ऐसा नहीं । तब वह कर्म जो है, वह जो है उस कर्म को । कर्म करते-करते होना चाहिए । मैं कोई ये गप मारता नहीं हूँ । इस संसार में रहकर किया है । मेरे कलीग्स अभी सब जीवित हैं । तो यह कर्म करते-करते वस्तु बननी चाहिए । वह essential । किन्तु वह कर्म वह कर्म खाली नहीं । परंतु कर्म करते समय भगवान की भावना हमारे में प्रकट रहे । जीतीजागती रहे । यह एक तीसरा रास्ता । सरलतावाला । किन्तु यह तो हो नहीं सकता ऐसे ।

• स्वार्थ में किसी का Negativeपन हम देखते नहीं •

जैसे हमें स्वार्थ लगा हो, तब स्वार्थ का कर्म करते-करते स्वार्थ की सभानता आपको तब रहती है । उस तरह भगवान के विषय में आपको स्वार्थ लग जाय तो बन सकेगा । तो वह स्वार्थ लगाने के लिए ही साधना । नित्य का नित्य का परिचय हमें साधना द्वारा ही हो सकेगा और रह सकता है । इससे आप साधना करो । जो कोई आपकी प्रकृति को अनुकूल हो वह । साधना हुए बिना सद्‌गुरु भी नहीं कर सकेंगे । क्योंकि सद्‌गुरु को चौबीस घंटे आपके मन में आप नहीं रख सकोगे । आपका संसार है । व्यवहार है । यह है । वह है । इससे सद्‌गुरु आप में जीएगा नहीं । सद्‌गुरु के लिए ऐसी भक्ति प्रकट नहीं हुई है । भक्ति प्रकट होगी तो जीता है हमारे में । अपने आप आता है । मेरा स्वयं का अनुभव है । भक्ति उसकी प्रकट करनी चाहिए । गरज हो तो गधे को बाप नहीं कहते हैं ? यह कोई गलत बात नहीं है । Psychological truth है । उस समय गरज लगी है । साहब, आप देखने जाते हो ? वह साला ऐसा है ? वह तो इसमें ऐसा है और इसमें ऐसा इसमें ऐसा हे और वैसा है । ऐसा सोचते हो ? आप सोचो सब इतने बैठे हो । पूछो कि आपको सब सचमुच उसकी गरज लगी हो, उसका स्वार्थ लगा हो, तब किसी दिन ऐसा सोचते हो Negativeपन? किसी दिन भी । सोचकर देखो आप ।

• भगवान का नाम लेकर छलनेवाले से नास्तिक ज्यादा अच्छे हैं •

यह मेरा तो चाहे जितनों ने खून किया है । भयंकर से भयंकर रीति से । तो भी मैं उनको चाहता रहता हूँ । अबे, किन्तु बिना लेनेदेने के मैंने आपको कुछ किया नहीं है । आपके बुलाने पर आया हूँ । मैं अपने आप पधारा नहीं आपके घर । कि आइये माबाप, मुझे रोट दो, पैसे दो । आपने बुलाया है तो मेरे साले मेरा खून क्यों करते हो ? तो फिर किस तरह होगा ? मैं तो देखता हूँ कि इस संसार में किसी को भगवान की गरज ही नहीं है । बिलकुल भगवान की गरज नहीं है । व्यर्थ भगवान को छलते हैं । दूसरा सब करना हो तो करो, किन्तु इस भगवान को मत छलो । अकारण मौखिक रीति से या अकारण रीति से भगवान का नाम छोड़ दो । वह ज्यादा राजी है । हमारे से ज्यादा जो भगवान को— नास्तिक है— भगवान को मानता नहीं कि साला, हम्बग है, वह ज्यादा अच्छा है । मैं उसे स्वीकार करता हूँ । किन्तु भगवान का नाम लेनेवाले, लिखा है–

बहुत बहुत कामनावाले, बहुत लोलुपतावाले,
हरि भजने क्या निकले ! हरि का नाम लजाते हैं ।

मैंने लिखा है । किसी जगह भजन में लिखा है । वह यह मैं आपको अनुभव से कहता हूँ । ये व्यर्थ गप मारता नहीं ।

• मैं पैसे का पूजारी नहीं, भगवान का पूजारी हूँ •

मैं तो सच ही कहनेवाला । मुए साले, मुझे नहीं बुलाएँगे तो । हजार हाथवाला मेरा भगवान है । वह मदद करेगा । इस साहब को मैंने पत्र लिखा । मुझे आप मदद मत करना । भगवान करेगा । आपको अनुभव तो होगा न ! अनेकों को अनुभव होता है । और वह भी मुझे भगवान ने भेजा हुआ होता है । अपने आप कुछ वह अपने आप खींचे हुए आये नहीं है । मेरा भगवान मुझे मदद करने के लिए भेजता ही रहता है । कोई न कोई । आज मैं ये इतने वर्ष जीया कोई न कोई ऐसा भेजा करता है । मुझे ऐसा मुझे मिला देता है कि मुझे मदद करते ही रहते हैं । ये मुझे जाना नहीं था । मेरा शरीर चले ऐसा नहीं है । गाँव में । मैं जाता था, रहने दो । अब मैंने मना कर दिया । इन्दुकाका आया । **मोटा,** ये तो जाना पड़े ऐसा है । मैंने कहा, ''भाई, मेरे से नहीं बनेगा । इसलिए मैं नहीं आऊँगा । मुझे यह दमा चढ़ता है और मुझे ..... मैं कोई पैसा का पूजारी नहीं । **में तो भगवान का पूजारी हूँ ।**'' तो मेरे भगवान के लिए मैंने किया है मेरे से । ऐसा तीनके जैसा था । किन्तु मेरे से हुआ वैसा सब किया है । मैंने कोई आलस-प्रमाद का सेवन नहीं किया है । और बीमार होते हुए भी बैठे-बैठे मैं मेरे भगवान का नाम लिखा करता हूँ । भगवान का भजन करता हूँ । बैठे-बैठे भी । मरते-मरते भी ऐसी बीमारी में भी मैंने भगवान को छोड़ा नहीं । लिखा करता हूँ । इतना सारा प्रत्यक्ष है कि उसे

मुझे साबित करने की जरूरत नहीं है । सतत मेरे साथ होती है पेन । और यह लिखा ही करता हूँ । आश्रम में रहनेवाले भी देखते हैं । इसलिए मुझे मेरे लिए कुछ कहना नहीं है ।

• भगवान का अनुभव अंदर होता है •

किन्तु आपको यदि भगवान का अनुभव करना हो तो वह भगवान तो पहले अंदर ही होता है । वह अंदर साधनाभ्यास के बिना होगा नहीं । साधना १४-१५ घंटे तक ले जाओ । आ जाओ । मेरे बेटे, मैदान में आप पड़ो । यह मुँह कि बात नहीं है । आप । ये करने की बात । वह शास्त्र से नहीं मिलेगा । प्रवचन से नहीं मिलेगा । उपदेशों से नहीं मिलेगा । किसी काल नहीं मिलेगा । भूल जाओ लोग सब । प्रयत्न से ही मिलेगा । पुरुषार्थ से ही मिलेगा । उस पुरुषार्थ में भावना आपका स्वार्थ उसमें लगे बिना होगा नहीं ।

तो कि स्वार्थ किस तरह लगाना ? कि अभ्यास करो । बुद्धि से समझ लो कि करने जैसा यही है । इसके सिवा दूसरा करने जैसा नहीं है । उत्तम से उत्तम यही करो । **यह संसार-बंसार करो आप । वह भगवान का समझकर करो ।** किन्तु उसमें से यह निष्काम होते जाओ । आसक्ति निकालते जाओ । मोह निकालते जाओ । लोभ निकालते जाओ । धीरे-धीरे करके और ऐसे सब आप हो जाओ । फिर आपको आपके साधन में भी जोर आएगा ।

अभी हम साधन करते हैं सही, किन्तु उस साधन में प्राण प्रवर्तनमान नहीं है । उसका कारण कि हमारा मन तो संसार में रहा हुआ है । निरा स्वार्थ में भरा पड़ा है और फिर हम बोलें वह सब निरर्थक है । किस तरह भगवान में आएगा ? यह आपका स्वार्थ आपका संसार में कितना घटा है, वह आपको समझ आएगा न ! बार-बार आपका मन ही आपको कह देगा । मन जहाँ-जहाँ जैसे-जैसे जिस तरह स्पर्श करता है, उस तरह आपका संसार है । इससे आप सद्‌गुरु को— या तो साधन के अभ्यास में गड़ जाओ या तो सद्‌गुरु को— या तो साधन के अभ्यास में गड़ जाओ । या तो सद्‌गुरु को पकड़ो । किन्तु सद्‌गुरु को पा-आधा घंटा आप बात करो । उसे रखो । अरे ! वह भी नहीं रहता है साहब । पा-आधे घंटे की बात छोड़ दो । कुछ झलक लगे । मिनट-आधी मिनट, कुछ थोड़ी देर लगेगी । झलक लगेगी, किन्तु वह झलक लगे तब । ऐसी जब भक्ति हो । ऐसी । यह भी आपको कहता हूँ अनुभव की बात । ऐसी भक्ति, ज्ञान उसके संबंध में प्रकट हुए हों तो उस झलक में भी आपको कुछ मिलता है ।

• सद्‌गुरु घर बैठे सिखाते हैं •

मुझे साधन घर बैठे, मैं कोई गया नहीं था । मेरे गुरुमहाराज के पास । घर बैठे उन्होंने मुझे सिखाया है । मुझे ऐसा लगा । उसने पहले सपने में सिखाया है । सपने तो मैं समझता था मिथ्या साले ये तो । सपने तो मिथ्या । दूसरे दिन वह का वह ही आया । Detail से । सपने तो मिथ्या । तीसरी बार आया ।

मिथ्या । चौथी बार आया । मिथ्या । पाँचवी बार । मिथ्या । वह कितना संस्कार हमारे में दृढ़ हो गया है । फिर मैंने सोचा कि साला करके तो देखने दो । छठवे दिन ज्ञान प्रकट हुआ कि साला हररोज ऐसा आता है सपने में तो हमें कर देखने में चाहे मिथ्या हो, किन्तु ये कर देखने में क्या जाता है ? करके तो देखो । इतनी सभानता आई । भगवान की कृपा से । तो किया तो अच्छा लगा । साला, ये तो अच्छा है ।

• सद्‌गुरु को हमारे में जीवित करने की रीति •

फिर मुझे ऐसा लगा कि ये योग्य नहीं साला । दो-चार बार यह सपने में फिर उसने मुझे । फिर तो मैं कुछ ऐसा नहीं मानता था कि ये मिथ्या है । सच्चा ही मानता था । Reality उसके बाद.... बाद में उसे मैंने जागृत किया । मेरे स्वयं में । प्रयत्न से साहब । ऐसे वैसे नहीं । मुझे कोई भक्ति नहीं लग गई थी । ये तो वह साधन आपसे नहीं हो सकता तो प्रत्यक्ष साधन किस तरह हो सकता है । **सद्‌गुरु में जीव किस तरह आप दाखिल कर सकोगे । इस साधना की रीति मैंने की थी, वह बताता हूँ । यह प्रश्न ऐसा है कि ये मुझे खुला होना ही पड़ेगा ।**

इससे बार-बार दिन में उसे मेरे सामने लाता । पचास बार, साठ बार, सत्तर बार, सौ बार, दो सौ बार ऐसा करते-करते डेढ़ साल में continuity हुई । फिर सब बात करूँ उसे । जो भी सभी बात करता । साधना का भी पूछता । सब बताते ।

सब कहते । कान से सुन सकता । किसी समय प्रत्यक्ष दिखे नहीं, किन्तु कान से सुन सकता । सब बातें सुन सकते । और साहब, उस समय जो सहाय हमें मिलती है । जो प्राण प्रकट होते हैं हमारे में । जो चेतन प्रकट होता है । कोई नया प्रकार का है । किन्तु अनुभव से जो समझ आती है । इस तरह गुरु में चित्त लगाकर देखो । मैं तैयार हूँ अभी । मरते-मरते इस शरीर को भले छिहत्तर हो गये । यह सतहत्तरवाँ बैठेगा । किन्तु अभी मैं तैयार हूँ । कोई आये मर्द बच्चा सामने मैदान में । मेरी तैयारी है । किन्तु मेरी शक्ति नहीं, भगवान की शक्ति से । भगवान की शक्ति से मेरी तैयारी है । **किन्तु अभी तक कोई जीव ऐसा मिला नहीं है, कि मेरे में जिसने चौबीसो घंटे मन रखा हो ।** काम कोई मेरा करता है । यह मैं कबूल करता हूँ । किन्तु वह तो हथियार है । उसे पता नहीं है । वह भले ऐसा मन से मानता हो कि मैं भगत । **मोटा** का इतना सारा काम करता हूँ । किन्तु वह सिर्फ मेरे भगवान का हथियार है । वह तो mechanical हथियार है । **उस समय उसके मन में काम करते समय *मोटा* की या भगवान की कोई किसी की सद्‌गुरु की सभानता कहाँ है ? तो काम करता हैं । और काम तो प्रकृति के वश होकर, स्वभाववश होकर करता रहता है । यह नहीं करेगा तो दूसरा करेगा ।** आप बुद्धि से सोचें । मेरा गलत हो तो मुझे कहना । मुझे मदद करता है । उसका मैं आभार मानता हूँ और मेरे भगवान से मैं प्रार्थना करता हूँ, उसे कल्याण कि गति दे । उसे भगवान प्रति प्रेरित

करे । **कोई कर्म करता है, इससे मैं एक ज्ञानी की तरह उसमें क्या है ? उसका धर्म है । वह करता है, ऐसा नहीं कहता हूँ ।** मैं कहता हूँ सही ।

• गुजरात के लिए मुझे प्रेम है •

मेरे काम सब गुजरात के लिए । मेरे निजी नहीं है । मुझे आज कोई निजी देता है । वह लेता हूँ । मुझे उसकी जरूरत भी है । मेरे आश्रम को तो मिला करेगा । अब उसकी मुझे निश्चिंतता हो गई है । करोड़ तक भी हो जाएगा । और मुझे पक्की निश्चिंतता है । इतनी सारी गले तक की । किन्तु निजी रूप से भी मुझे चाहिए पैसे । क्यों चाहिए यह मुझे कोई पूछना मत । आपको देना हो तो देना । और ना देना हो तो मुझे उसकी कोई परवाह नहीं है मुझे । मैंने तप किया है गुजरात के लिए । वह कोई मना कर सके ऐसा नहीं है साहब । इतने सारे सालों तक मैंने तप किया है । तप का फल मैं माँगता नहीं । किन्तु गुजरात के लिए मुझे प्रेम है । तो गुजरात को मेरा पोषण करना चाहिए । साला, आपके कुटुंब को कोई कमा कर दे । आपको बहुत संपन्न करे । तो आप उसको दो या ना दो ? तो गुजरात का धर्म है कि मुझे दे । मेरे आश्रम को तो मिला है और अब मिला करेगा ।

ये कल आये भाई । मुझे मैं गद्‌गद हो गया कि इस आदमी को मैं मना कर बैठा । इतनी सारी जिसने मुझे मदद की । मेरा शरीर चले ऐसा नहीं है । हाँ, किन्तु भगवान मुझे

मदद करेगा । चलो आऊँगा किन्तु भाई, तुम दस हजार देना । जाइए, जरूर दूँगा **मोटा** । इस काल में एकदम कह देना और एक हजार उपर दिये । ग्यारह हजार दिये । तो मैं देखता हूँ । भगवान कैसा है । अनेक जगह ये डेढ़-दो साल में साहब मेरा अनुभव है कि मैंने चाहा हो तीन हजार और मिले हो ग्यारह हजार । सोचा हो सात हजार और मिले पंद्रह हजार । ये मेरी पीढ़ी है जो प्रति वर्ष ४०-५० हजार । इस साल एक लाख रुपये दे दिये । ऐसे मुंबई में भी मुझे अनुभव मिले हैं । भगवान तो मुझे दिया करता है कि यह लड़का ऐसे शरीर से घूमता है और फिर भजन किये बिना मैं जीता नहीं । प्रतिदिन लिखा करता हूँ भजन और भगवान की कृपा से छपवानेवाले भी मिलते हैं । इससे मुझे आनंद है ।

• मनादिकरण को भक्ति में लगाओ •

इससे मैंने जिस तरह वर्ताव किया है और जैसा कर रहा हूँ वैसा मैं सभी को कहता हूँ कि भगवान को अंदर प्रकट करने के लिए आपको मन आदि करणों को आदत डालनी पड़ती है । वह जानता है मनादिकरण ही । मन, बुद्धि, चित्त और अहम् ये उसके साधन हैं । वे जानेंगे । संसार-व्यवहार का भी सब वे ही जानते हैं । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्— दूसरे कोई जानते नहीं ... दूसरे किसी की जानने की ताकत नहीं । वे जानते हैं अंदर .... उसी तरह यह भी वे जानेंगे । कब ? ये मन, बुद्धि, चित्त और प्राण । ये संसार की सभी समझ है ।

उसे समझ आ गई है । उसका अभ्यास हो गया है पक्का । उसी तरह जब चेतन का मन, बुद्धि, चित्त और प्राण का ऐसा पक्का अभ्यास होता है, तब अपने आप सब जानता है । साधन तो उसके वही हैं । किन्तु उसे भक्ति लगनी चाहिए । भक्ति लगे बिना ज्ञान में कोई ज्ञान कहे, ज्ञान वह शुष्क नहीं । कहनेवाले मूर्ख मनुष्य हैं ।

ज्ञान में जो अनुराग है, ज्ञान में अनुराग है । ज्ञान वह जितना चिपकता है । ज्ञान वह चिपक जाता है । स्पष्ट दर्शन उसका । भक्ति का अतः धूँधला होता है ऐसा मेरा नहीं कहना है । किन्तु भक्ति का प्रदेश अलग है । ज्ञान का प्रदेश अलग है । दोनों आपस में मिश्रित है । एकदूसरे से अलग हैं बिलकुल वैसा नहीं है । दोनों आपस में मिश्रित हैं । किन्तु ज्ञान में जो अनुराग है ।

एक आदमी को तो आप जानते हो । संसार-व्यवहार में कुटिल से कुटिल, लुच्चे से लुच्चा । किन्तु किसी प्रकार हमारा संसार-व्यवहार में उसका संग हुआ हो । किन्तु आपका मन उसमें नहीं चिपकेगा । हकीकत की बात है । आपकी pyschology, बुद्धि कबूल करे । किन्तु एक आदमी ऐसा हो कि जिसे आपको बहुत प्रेम हो । जिसमें सद्‌गुण है, नीति है, अच्छा काम करनेवाला है । उसकी प्रशंसा होती है सब जगह । और ऐसे का संग होता है । उसके साथ बहुत प्रेम होता है आपको । यह प्रत्यक्ष बात है । खुली बात है । उसी तरह हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् ये सब जब भगवान में लगे,

तब भगवान तो दिखता तो है नहीं । हमारे सामने ऐसा कोई खुला तो है नहीं ।

• भगवान को कोई आकार नहीं, आकार सभी कल्पित हैं •

कोई उसे आकार नहीं । सब आकार बनाये हैं, वे कल्पित हैं । सच्चे तो कोई है ही नहीं । **मैं तो कहता हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश वे भी काल्पनिक है । उस भगवान के तीन functions । तीन functions के deity हमने कल्पना की । सिर्फ लोगों की समझ के लिए । सचमुच में वे हैं नहीं । बिलकुल नहीं है साहब । मेरी समझ ।** I may be right or wrong । किन्तु मैंने उनको शायद कभी भी स्वतंत्र रीति से देव के रूप में मैंने माने नहीं हैं उनको ।

किन्तु मूल मेरी बात ऐसी है कि हमारे अंत:करण में भगवान को उतारने के लिए दो वस्तु चाहिए । साधना । कठोर साधना । या तो सद्‌गुरु के लिए ऐसी भक्ति । वह भक्ति घंटे, दो घंटे की नहीं चलेगी और चौबीसो घंटे आपके मन में वह खेले फिर देखो खूबी ।

• प्रेमपूर्वक के हुक्मपालन से साधना में गति मिलती है •

और आपमें शक्ति चाहिए । चाहे जैसा हुक्म दे आपको । वह हुक्म का पालन किये बिना । बिना सोचे संकल्प-विकल्प बिना । कोई विचार नहीं होना चाहिए । वृत्ति नहीं ।

आज हम मैं मेरे मेरे साहब को काँटावाला कि यहाँ से बस में नडियाद आना । किन्तु नहीं आया जाएगा उनसे । वे तो मोटर लेकर ही आवे कि नहीं, नहीं, इस तरह आया जा सकता है **मोटा** ? अबे, कुछ भी हो जाय । नहीं क्या ? चलकर आने का कहे तो चलकर आया जा सकता है । भक्ति लगे तो न ! इससे मुझे समझ आएगी कि अभी साहब को भक्ति लगी नहीं है । उनके मुँह पर ही मुझे कहना पड़े । **गुरुमहाराज कहते किसी के मुँह पर कहना, पीछे नहीं । अबे, उसमें क्या है । बस में बैठ़कर आयें । साली, प्रतिष्ठा को तो हमें धूल में डाल देना है । प्रतिष्ठा का तो खून कर देना का है । उखाड़कर मूल में से । इस संसार के मूल में से प्रतिष्ठा को तो तोड़फोड़ कर चुरा कर देना है । किन्तु किससे होगा वह ? साहब नहीं होगा । बहुत कठिन है साहब ।**

ये आपको कहे कि ये कोट-बोट निकाल कर खुले शरीर से जाओ । नहीं जाया जाएगा आपसे । जा सकोगे भट्ट साहब ? हिम्मत रखना थोड़ी । छोटा-सा काम है । हुक्म का पालन करना है । हुक्म का पालन करने का काम बहुत छोटा है । किन्तु वह प्रेमभक्तिपूर्वक यदि पालन करो, उसमें से गति मिल जाती है । मैंने स्वयं अनुभव किया है । और मैंने हुक्म का पालन किया है । एक भी संकल्प-विकल्प किये बगैर । कितने सारे हैं । इससे आप अभी तो बोलते हो, किन्तु तब आपको नहीं हुआ होगा उसका क्या प्रमाण ? तो वह तो मेरे पास है नहीं । वह साबित करने देने की बात नहीं है । किन्तु एक बात कहूँ ।

Psychology का मुझे थोड़ा बहुत अभ्यास है । मैंने कोई शास्त्र पढ़े नहीं है । Psychology का । किन्तु जब जो हुक्म मिले और यदि डगमग हो तो वह जो प्रेमभक्तिपूर्वक एकदम भागने का जो हो । कूद पड़ने का हो, वह कभी होगा नहीं । तो साहब, आप कोई भी pschologyवाले को पूछ लो । उस प्रकार मैंने किया है । और साक्षी है आज । **सिंहों के साथ रहा हूँ । सात दिन मेरा मित्र वजु साथ में था । तब उसे आशंका हो तो किस तरह वहाँ रह सकते हैं ? उसको तो दस्त लग गये थे । और पिशाब हो गया था । दो दिन तक । तीसरे दिन मिट गये, साहब ।**

तो मैं जो कहता हूँ, वह अनुभव की बात कहता हूँ । और इतनी समझ इसलिए देता हूँ कि आप पढ़े-लिखे लोगों को मेरी बात समझ में आ सके कि बात सच है । **मोटा** की बात । इस तरह मैंने हुक्म का पालन किया है ।

मूल बात पर अब फिर से आ जाता हूँ । अब समापन कर लेता हूँ । कि भगवान का भाव अंदर उदय होता है । संसार की वृत्ति भी अंदर उदय होती है । आप मेरा गलत हो तो मुझे कहना । संसार के संस्कार भी अंदर उदय होते हैं । वृत्तियाँ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये सभी वृत्तियाँ मेरे में अंदर उदय होती हैं । मेरे में क्या सब में । एक-एक में । ये अंदर उदय होती हैं । अंदर से बाहर व्यक्त होती हैं । उसको कोई मना नहीं कर सकेगा ।

उसी तरह यह भगवान का भाव अंदर व्यक्त होता है। और अंदर व्यक्त होता है, तब वह एक ईश्वर है। अंदर व्यक्त होता है। अंदर व्यक्त होता है, जिस समय व्यक्त हुआ, तब एक है और अंदर ही अंदर फिर द्वैत भी होता है। अंदर ही द्वैत होता है और बाहर फिर आता है, तब द्वैत रूप ही होता है। किन्तु अंदर दो स्वरूप हैं।

• भक्त ज्ञानी भी होता है और ज्ञानी भक्त भी होता है •

सब से पहले भक्त हो, मीरांबाई हो। नरसिंह मेहता हो। नरसिंह मेहता भक्त और दोनो हैं। मीरां का भी है। मीरां के ऐसे भजन हैं कि जो उसके ज्ञान को व्यक्त करते हैं। एक ही उदाहरण दूँ कि भजन है उसका। अभी याद ना आये किन्तु

ऊँच ऊँच महल बनाऊँ
बीच बीच राखूँ बारी
साँवरियाँ का दर्शन पाऊँ
पहर कसुँबी साड़ी।
यानी भक्ति पहने बगैर।

(बीच में एक भक्त। मैंने चाकर राखोजी। पू. श्री कहे हाँ, वह बात सच। किन्तु उसका काम नहीं है।)

परंतु यहाँ कसुँबी साड़ी पहनी यानी भक्ति। भक्ति पहनकर फिर ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ यानी ज्ञान। वह ज्ञान है। इस ज्ञान की दशा में– ज्ञान की दशा में मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी

हो, किन्तु ये सब मिश्रण है जैसे । हमारे में भी मिश्रण है । जो उस तरह उसमें भक्ति मिली हुई है, तो कि **बीच बीच राखुं बारी ।** ऐसे ज्ञान के महल तो बनाती हूँ, किन्तु खिड़की बीच में रखती हूँ । तो उसके दर्शन पाऊँ । पहन कसुँबी साड़ी उसकी भक्ति । उसकी भक्तिरूपी खिड़कीयों द्वारा मैं दर्शन करती हूँ । इससे मीरां भी ज्ञानी थी । और भक्त भी थी । नरसिंह मेहता भी भक्त और ज्ञानी ।

किन्तु उसका अर्थ इतना ही है कि आप भक्त हो या ज्ञानी हो, किन्तु वह दोनों हो । कोई ज्ञानी हो तो भक्त है । गीता में उसका प्रमाण है । कि मेरे भक्त को मैं बुद्धियोग देता हूँ । यह तो बोलने की रीति से लिखा है । किन्तु परिणाम है वह ।

• भगवान का भाव जगाने के लिए साधना •

तो मूल बात थी कि भगवान जो भी कोई संसार-व्यवहार जो भी कुछ सब अंदर-अंदर ही व्यक्त होता है । फिर बाहर व्यक्त होता है । पहले अंदर व्यक्त होता है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् में । वह व्यक्त होता है । सब साथ में हैं । एक नाम दिया है । सच में तो वे सब अंदर व्यक्त होते हैं । भगवान भी अंदर व्यक्त होते हैं । और बाहर फिर आते हैं । वह जैसे बात सच है, वैसी ही यह है ।

किन्तु उसके लिए संसारव्यवहार में तो हररोज का हमारा अभ्यास जागे– जन्मे तब से ही । हररोज के चौबीस घंटे का । तो चौबीस घंटे का व्यवसाय कहाँ है आपका

भगवान के बारे में ? वह हो जाने दो । फिर देखो । तो उसके लिए साधना ।

साधना मैंने की है । अभी मेरा भाई जिंदा है । मेरे.... मेरे वृद्ध भाभी हैं । मेरे से ४ साल बड़े उनको पूछकर देखो । एक दिन घर में सोया नहीं हूँ । इस शरीर को बुखार आया था भयंकर । पाँच पाँच डीग्री बुखार, फिर भी घर में सोया नहीं हूँ । मेरी माँ को कैसा हुआ होगा ? सोचो । माँ है उसे । किन्तु वह मैंने रखा नहीं । कि उसे भाव माँ का है । यह अच्छी बात है, माँ को होता है यह सच है । मैंने तब माँ की अवहेलना नहीं की थी । जाते समय मैंने मेरी मेरे धर्म की बात मैंने आगे रखी है । उसकी अवहेलना मैंने कभी की नहीं है । उसे लगता था, यह बात सच है । किन्तु मेरे मन में वह नहीं था भाव । धर्म का भाव मुख्य था । मेरे मन में । किन्तु एक दिन.....ऐसी कितनी बीमारियाँ मुझे आई है, किन्तु घर में मैं सोया नही हूँ ।

• भगवान के मार्ग के साधन– अभय, नम्रता, मौन, एकांत •

अभय विकसित हुए बिना, अभय, नम्रता, मौन और एकांत । अभय और नम्रता वह ऐसे हैं कि introvert करते हैं । आप कोई भी psychologist को, आपके शास्त्र को जाँचो । **मौन और एकांत introvert. और मौन, अभय,**

नम्रता । और मौन और एकांत वह बहिर्मुखता कम करते हैं । तो ये चार साधन किये बिना आप भगवान के मार्ग पर जाओ यह मुझे किसी काल में संभव नहीं लगता है । ये आने ही चाहिए । आपमें वह शक्ति नहीं होगी तो नहीं चलेगा । भयंकर जगह पर जाओ । भयंकरता का सामना करो । मुश्किल आवें तो सामना करो । मुश्किल के समय में आप कैसे अड़िग रहते हो । स्वस्थ रहते हो । यह सब आप जाँचो । नहीं तो नहीं चलेगा ।

• पहले कठिन साधना फिर भगवत्-कृपा •

यह एक ज्ञानमार्ग है । भक्ति में भी । तो पहले अंदर हमें अनुभव होने के लिए साधना कठिन और चौदह-पंद्रह घंटे तक ले जाओ । फिर ... फिर the Grace of the Lord will work with you । Not till then । पंद्रह-सोलह घंटे काम करते हो । यह भी भगवान की कृपा तो है ही । उसकी Grace वहाँ है ही । अन्यथा वह संभव ही न होता । किन्तु वह आप ले जाओ वहाँ तक । फिर आगे भगवान आपको ले जाएँगे । वह आपको समझ में आएगा । परंतु वहाँ तक ठिकाना नहीं पड़ेगा । घंटा, आधा घंटा करोगे, उसका संस्कार पड़ेगा । किन्तु वह संस्कार के असर की बात जो ये विद्वान और शास्त्रकार और ये संन्यासी कर रहे हैं, वह भी गलत है । वह संस्कार कैसे ..... आपकी प्रकृति कैसी है ? उस प्रकृति के उपर ही असर होगा न ।

आपके संस्कार जो करोगे आप वह संस्कार करनेवाली आपकी प्रकृति है न अभी तो । तो वह प्रकृति कैसी है ? तब प्रकृति प्रकार के संस्कार पड़ेंगे न ? वह सनक जागे । प्रकृति में भक्ति की सनक जागे तब और उस समय जो हो उसके संस्कार कोई न्यारे हैं । वह सनक जागनी चाहिए । वह सनक जागे बिना काम नहीं होगा इसमें और भगवान की कृपा से मेरे से ऐसा हुआ है ।

अब अभी कहना बात फालतू है । किन्तु किसी को नडियाद में जाकर सगेसंबंधी अनेक हैं । तलाश करना हो तो कोई करके आये । मेरी तैयारी है, और यह कहता हूँ वह मेरे अनुभव की बात सब कहता हूँ ।

तो पहले अंदर व्यक्त होता है । संसार या भगवान । वह अंदर व्यक्त होता है । संसार व्यक्त होता है । क्योंकि चौबीसो घंटे का उसके साथ हमारा परिचय है । एक पल भी उससे अलग नहीं है ।

• भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन का अनुभव •

स्थल, संयोग कुछ भी नहीं अनुभवी को । इससे भी सर्वप्रथम होता है उसे अद्वैत । फिर द्वैत उसका भक्त होने से । उसकी प्रकृति होने से । वह कृष्ण का भक्त हो तो कृष्ण जैसे दर्शन होते हैं । किन्तु वह कृष्ण जो दर्शन होते हैं । वह कोई इस चित्र के समान । वह कृष्ण कोई न्यारा है । वह कोई ऐसा सूक्ष्म

प्रकार का है कि वह वर्णनातीत है । वह शब्द से कहा जाय ऐसा नहीं है । वह स्वरूप कुछ इतना सारा सुंदर है कि तेज तेज का अंबार किन्तु गरमी नहीं बिलकुल । इतना सारा आह्लादक... इतना सारा आह्लादक और आगे-पीछे का वातावरण और हम स्वयं ऐसे सुगंधीमय हो जाते हैं और इतना सारा वह स्वरूप दिखता है । दैदीप्यमान कि हम चौंधिया जाते हैं, साहब ।

मैंने 'जीवनदर्शन' में लिखा है । किसी जगह । लिखता नहीं मैं तो ऐसी बाबत । किन्तु ये नंदलाल ने प्रश्न पूछे थे । अब उसे जवाब मैं बराबर न दूँ, तो उसे बराबर न लगे । इसलिए मैंने जवाब उसे दिये थे । वे फिर छप गये तो भले छप गये । क्योंकि मेरे दिल की यह सच्ची बात है ।

तो मूल हमारी बात जो बात हुई थी कि अंदर ही पहले जो कुछ व्यक्त होता है । जो भी कुछ व्यक्त वह भगवान हो या संसार हो । वह सब अंदर । पहले अंदर व्यक्त होता है । और ये संसार का नित्य का चौबीस घंटे का हमें परिचय है । वह परिचय होने से सहज रूप से बनता है ।

• ज्वालामुखी समान दहकती जिज्ञासा प्रकटाओ •

जब भगवान का हमें परिचय नहीं है । उसके लिए कठिन साधना नहीं है । किसी साधन को पकड़कर हम कितने घंटे तक रख सकते हैं, वह भी परीक्षा हमने की नहीं है । सद्गुरु में हमारी भक्ति नहीं है । इससे यह बनना संभव नहीं है । ज्यादा

से ज्यादा तो आप संस्कार विकसित कर सकते हो । किन्तु वह संस्कार भी सिर्फ प्रकृति के ही होंगे । क्योंकि प्रकृति—प्रकृति की छाया पर—प्रकृति की भूमिका पर यह आप साधन करते हो । उस साधन में कोई सनक नहीं है । किसी प्रकार का कोई टेम्पो (tempo) नहीं है । किसी प्रकार का । प्रकृति में भी ।

प्रकृति तो हरएक की । भक्त, ज्ञानी ये सब हो गये जो । वे सब मूल में तो प्रकृति में ही थे न ! किन्तु उसका जो उछाल था । Volcanic aspiration थी । वह उछाल हमारे में हो तो हमारे संस्कार अलग होंगे । किन्तु ऐसा उछाल न हो और आप कर्म करो तो वह संस्कार प्रकृति के ही रहेंगे । उच्च प्रकार के होंगे वह बात सच्ची । इससे ज्यादा से ज्यादा तो इसमें आप संस्कार विकसित कर सकेंगे । इसके अलावा कोई कुछ कर सके । ये साधना की बात तो सब गलत है ।

• भगवान के नाम से सब मिलता है •

आप करो स्वयं । आपको स्वयं को आत्मविश्वास आना चाहिए । वह आत्मविश्वास यदि आपको न आये तो व्यर्थ है । मैं तो कहता हूँ कि गुरु को भी छोड़ देना । साले झूठे हैं । गप्पेबाज हैं मेरे बेटे ।

मैं तो गुरु नहीं हूँ । मैं किसी को चेला बनाता नहीं हूँ । किन्तु मैं कहता हूँ सही कि भैया, भगवान का नाम बहुत उपयोगी है और संसार में उपयोग में आता है । (पधारीए साहब !) संसार में उपयोग में आता है । ये सब मुझे मिले

हैं, वह भगवान के नाम से न ! (क्यों बहन?) मुझे कहाँ से मिले वर्ना ?

मेरा भगवान तो सचमुच ! आज मुझे ग्यारह हजार रुपये दिये । मुझे क्या देगा कोई ? राम, राम करो बाप । पाँच हजार के लिए तैयार हुए थे । वह भी सभी संबंधियों के कारण । संबंधी थे ऐसे ।

• भगवान की समग्रता का अनुभव हमारे लिए असंभव है •

ये सब बात अब बंद कर देता हूँ । भक्ति जागृत हुई हो तो भी उसके समग्र पहलूओं को नहीं समझ सकोगे । भगवान के भी । भगवान के हम संपूर्ण भक्त हो जाँय । संपूर्ण कहता हूँ । तब भी उसके समग्र पहलूओं को हम भगवान को अनुभव में नहीं ला सकेंगे । Impossible । अनंत पहलूओं । उसके पहलू ही नहीं हैं मैं तो कहता हूँ । वह तो गलत बात बोलते हैं हम । **उस**को पहलूओं कैसे फिर ? किन्तु उसे समग्र रूप से हम नहीं अनुभव कर सकेंगे । भगवान को भी । भक्ति जागृत हुई हो तो भी । संपूर्ण रूप से ।

क्योंकि **वह** तो ऐसा न्यारा है, इतनी सारी कला-लीलावाला है कि **उस**की समग्रता हमारे में समा नहीं सकती । कारण.... कारण समा नहीं सकेगी । उसका कारण हम हैं । हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण इतनी समग्रतावाले हुए नहीं हैं । हमारा शरीर भी ऐसी समग्रतावाला हुआ नहीं है । शरीर तो बाद में आता

है । किन्तु हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण भी ऐसी समग्रतावाले प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक का **उस**के संबंध में हुए नहीं हैं । इसलिए **उस**की समग्रता हमें स्पर्श नहीं करती है । अमुक भाग स्पर्श करता है । **उस**का कारण नहीं है । कारण हम हैं । कि हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण ऐसे समग्रतावाले हुए नहीं हैं । ज्ञानभक्तिपूर्वक के । इसलिए **उस**की समग्रता हमें स्पर्श करती नहीं है । अमुक भाग ही स्पर्श करता है ।

जिज्ञासु : अनुभवी को..... होता ही नहीं न !

श्रीमोटा : देखिये फिर भूल की । अनुभवी है कि कौन है ? अनुभवी मैं कहता हूँ कि उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् रंग गये हैं सही । किन्तु उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् उसकी समग्रता भगवान की समग्रता उसमें अभी प्रकट नहीं हुई है । अनुभवी हुआ सही । चौबीसो घंटे वह भगवान में ही है । किन्तु उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् जो भगवान की समग्रता है, ऐसी समग्रतावाले हुए नहीं हैं ।

यह मेरी हककीत । वे समग्रतावाले होते तो भगवान भी समग्र । **यह जो समग्रता भगवान की समग्रता मैं अनुभव नहीं कर सकता हूँ । मैं अनुभव करता हूँ सही भगवान को । अनेक रीत से, अनेक विचार में, अनेक कर्म में, अनेक तरह से अनुभव करता हूँ सही । किन्तु वह समग्रता नहीं अनुभव करता हूँ । यह मैं कबूल करता हूँ । मुझे जैसा मानना हो वैसा मानो ।**

जिज्ञासु : ऐसा कोई व्यक्ति हो सही जिसने समग्रता का अनुभव किया हो ?

श्रीमोटा : नहीं । मुझे ख्याल में नहीं है । यह ख्याल श्रीअरविंद ने भी स्वयं हाँ कही है। किन्तु उन्होंने अनुभव किया हो तो वे जाने । किन्तु मेरे ख्याल में नहीं है । मुझ स्वयं को । वे हमारे जब मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् ऐसे समग्रता वाले हो जाएँगे कि उसी पल ही । देर नहीं है उसमें । उसमें पल भर नहीं है । **किन्तु वैसे सब कुछ जानता हूँ । कर्म में, व्यवहार में, किसी को कहता करता नहीं हूँ । या बोलता भी नहीं हूँ । मैं तो सब सामान्य ही बात करता हूँ । ये ज्ञान की बात तो आज आप आये और उस दिन मैं स्वयं बोला था, इससे ये सब कहा ।**

जिज्ञासु : नाश हो गया है ऐसा तो कहने में आता है कि द्वैतभाव नाश हो जाय फिर कौन किसको उद्देश कर देखे ? कौन किसको उद्देश कर स्पर्श करे ? वह अनुभवी कर्म करता है, वह किसको उद्देश कर करता है ?

श्रीमोटा : जो अनुभवी है, वह अद्वैत का और अद्वैत के अनुभव में टिकता नहीं है । रहता नहीं है । वह द्वैत का ही अनुभव होता है। द्वैत में ही आनंद है और आप या चौहाण साहब को, हम या काँटावाला साहब हों और अलग हों और आनंद-आनंद हो और एक ही हों । आनंद में फर्क आ जाता है ।

द्वैत का आनंद कोई अनुपम होता है और जाने-अनजाने में जगत साकार को ही भजता है । बारहवाँ अध्याय आप गीता

का लो । जाने-अनजाने में लोग साकार का ही स्तवन करते होते हैं ।

इससे अद्वैत का अनुभव होने के बाद अद्वैत में ही पड़ा रहता है । ऐसा नहीं रहता । अधिकतर मेरे हिसाब से तो ९९.९९% द्वैत में ही आ जाते हैं ।

तो अद्वैत का अनुभव भगवान की सभानता का टूटे नहीं उसकी— अखंड अखंडाकार भगवान और मैं अलग नहीं वैसा भी उसे है । किन्तु भगवान जैसे स्वयं स्वतंत्ररूप से सब में खेल रहा है । उसमें अकेला होने पर भी । ऐसी उसकी स्थिति होती है ।

जिज्ञासु : तो ऐसा होगा कि दो difference पड़े । *स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव !* (गीता २/५४) ऐसा कहा इससे वह समाधि अवस्था में हो वहाँ तक वह बिलकुल अद्वैत की अवस्था हो और व्युत्थान दशा में आप कहते हो वैसी दशा में ऐसा बने सही ?

श्रीमोटा : नहीं । नहीं । ये सब शब्द की... सही रीत से तो सर्वत्र अद्वैत ही है । यह तो हमें बोलने में लगता है । **जिसे अद्वैत का अनुभव हो गया और दीखने में वह द्वैत में खेलता लगे, किन्तु उसे तो अद्वैत ही है सब । क्योंकि जो भी सब करता हो, वह भगवान ही है सब उसे । निमित्त में कार्यरत होता है सही ।**

मैं ये हरि को कई बार दिन में पचास बार याद करता हूँ । किन्तु हरि यह शरीर चाहे रहा हो, परंतु वह भगवान

सिवा बात नहीं । भगवान ही जिसमें और तिसमें । आरोपण उसका भगवान का ही है । आरोपण करना नहीं है । सहजरूप से हो जाता है उसे । इससे यों दिखे भले अलग, किन्तु उसके मन में अद्वैत ही रहता है जो हो वह ।

नहीं तो क्या होगा ? मानो कि यदि वह न हो तो वह संपूर्ण तद्रूप ना हो उसके साथ । निमित्त के साथ तद्रूप नहीं हो सकेगा । जैसे चेतन पेड़ के साथ पेड़ रूप, आकाश में आकाश रूप, तेज में तेज, हवा में हवा, पृथ्वी में पृथ्वी तद्रूप है और उसी तरह अनुभवी भी उस-उस निमित्त में तद्रूप । वह यदि संपूर्ण अद्वैत की स्थिति उसकी ना हो तो नहीं होगा, साहब ।

मैंने वैसे भक्तों को पहचाने हैं । अच्छी तरह से । बातचीत से, प्रसंग से, कि वे ये निमित्त की बात बराबर स्वीकार नहीं करते थे । किन्तु अनुभव होने के बाद ही निमित्त आये उसे निमित्त के साथ वह तद्रूप होता है । वह ऐक्य होने से ही । अद्वैत होने से ही । किन्तु अकेला सिर्फ कुछ ही कुछ नहीं है । शून्यावस्था । Nothing exist । कुछ भी बनता होने पर भी कुछ भी उसे बिलकुल सभानता नहीं । स्वयं के एकेले की ही । वह भी एक काल में ऐसी पल आती है कि वह भी चली जाती है ।

जिज्ञासु : स्वयं की इच्छा हो ही नहीं ।

श्रीमोटा : इच्छा का सवाल ही नहीं है । इच्छा तो रहती ही नहीं यहाँ पर । किन्तु ऐसी एक स्थिति आती है कि कहीं

पर कुछ नहीं । शून्यावस्था । यह शून्यावस्था जो है, वह मेरे हिसाब से उत्तम से उत्तम अवस्था है ।

उनके कोई कहेंगे कि भाई फलाना लोगों ने ईश्वर को नकार दिया है । तो ईश्वर ही नहीं है और उसका स्वयं का अस्तित्व नहीं है । तब उसका । उस अवस्था में उसे स्वयं का भी अस्तित्व नहीं है । ईश्वर का भी नहीं है । कुछ किसी का नहीं । कुछ ही नहीं हं...अ...Complete Oblivious । ऐसी स्थिति रहती है । वह फिर टिकती नहीं लम्बी अवधि । किन्तु बाद में अवतरण होने के बाद अद्वैत । वह निमित्त के साथ तद्रूप होता है। यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि वह अद्वैत है ।

अन्यथा द्वैत का अनुभव हुआ हो, कोई भक्त हो तो उसे अद्वैत का अनुभव हुआ हो । और एक अद्वैत का अनुभवी है और द्वैत का भी अनुभवी है । दोनों एक साथ । वह तद्रूप हो और वह तद्रूप हो । दोनों में प्रकार में फर्क है ।

अब वह तो मुझे तो मुँह से बोलना है.... अनुभवी की बात करता हूँ ।

श्रीमोटा : (एक भक्त को) वहाँ बैठो प्रभु, अब जगह नहीं है । आगे, वहाँ से राम-राम करो ।

जिज्ञासु : ज्ञान और ध्यान इन दोनें में difference है ऐसा मानता हूँ ।

श्रीमोटा : ध्यान तो साधन है । ज्ञान साधन नहीं । ज्ञान तो आम के पेड़ का पका हुआ फल । अनुभव की स्थिति से ज्ञान । दूसरा ज्ञान नहीं । ध्यान तो साधन ।

जिज्ञासु : अब मेरा ऐसा कहना था । इससे कर्म की बात । मेरी ऐसी समझ, इस प्रकार की है कि सुषुप्ति अवस्था में जो मनुष्य कर्म करता नहीं है ।

श्रीमोटा : ये सब उड़ जाता है ।

जिज्ञासु : चला जाता है ।

श्रीमोटा : हाँ । साधक भी ।

जिज्ञासु : इस तरह ज्ञान होने के बाद कर्म उसे छोड़ देता है, कर्म को वह नहीं छोड़ देता । ऐसी मेरी मान्यता है ।

श्रीमोटा : कर्म चला जाता है न । बिलकुल चला जाता है उसे । Mastery है उसकी । वह कर्म करे भी सही और न भी करे । करना हो तो करे । ना भी करे । और वह स्थूल का आधार लेता है । किन्तु स्थूल का आधार भी लेने की उसे जरूरत नहीं है । किन्तु क्यों लेता है अनुभवी कि उसे उस निमित्त के साथ काम पूरा करना है । **और सच्चे निमित्त का एक ही हेतु कि किसी भी उपाय से उसमें अभिमुखता प्रकट हो । भगवान के लिए अभिमुखता उसको प्रकट हो । तब ये सामान्य जीवों से तो यह होनेवाला नहीं है । किसी काल में । अपने आप उनको अभिमुखता भगवान की प्रकट हो वह होनेवाला नहीं हैं ।**

तब उसके कोषों में उसे (अनुभवी को) उतरना पड़े । और कोषों में उतरता है । तो भी वहाँ इन्कार है उसके लिए । इससे जैसे निम्न कोटि निमित्त की वैसे उसे (अनुभवी को) ज्यादा

से ज्यादा गहरा उतरना पड़ता है । इतना ही नहीं शरीर से भी सहन करना पड़ता है अनुभवी को । किन्तु वह सब कह सके ऐसा नहीं है । किन्तु वह तो सब **मोटा** को .... **मोटा** को अपने को बड़ा दिखाने के लिए ये सब बात करते है । अमुक बात स्पष्ट कह सकते नहीं । अकेले हों तो कही जा सकती हैं । खुले में कही नहीं जा सकती हमसे ।

जिज्ञासु : दूसरों की वृत्ति, मनोवृत्ति भी ।

श्रीमोटा : आये.... आये ही ।

जिज्ञासु : किन्तु उस प्रकार से जो निमित्त के साथ जुड़ने का कारण होता है, उसमें पूर्व के कारण हैं ?

श्रीमोटा : वह सही । मानो कि अनुभवी होने के बाद काल चला जाता है उसे । काल नहीं रहता है । वह काल चला जाता है । काल की गणना नहीं रहती । दूसरा सब चला जाता है । संबंधों उसके साथ के । ऐसा-ऐसा हुआ था । वह सब चला जाता है । सिर्फ एक ही निमित्त के किसी कारण से पूर्व जन्मों के अनेक कर्मों के कारण यह निमित्त मिला है । वह उसे ज्ञानपूर्वक की समझ है । इससे एक ही धर्म उसका कि **उसमें किसी भी प्रकार से भगवान की अभिमुखता प्रकट हो । वही मुख्य उसका idea । वह idea उतारने के लिए उसे निमित्त के कारण जितनी निम्न कोटि उतना उसे ज्यादा से ज्यादा गहरा उतरना पड़ता है ।**

जिज्ञासु : तो फिर अनुभवी का भी एक प्रकार का अवतरण नहीं कह सकेंगे ?

श्रीमोटा : अवतरण तो कहा जाएगा । किन्तु उसे स्वीकार करे तब ।

जिज्ञासु : अवतारों की बात है हमारे यहाँ ।

श्रीमोटा : हाँ वह होता ही है । **अनुभवी इतने सारे हजारों निमित्त के साथ अवतरण हुआ करता होता है । और एक ही पल में फिर एक ही समय पर मैं यहाँ बोला करता होऊँ और कहाँ का कहाँ जाऊँ ? कितनी सारी जगह पर जाऊँ । किन्तु वह तो बोलना निरर्थक है न ? वह सब बोलने का अर्थ क्या ?**

जिज्ञासु : यानी अमुक ही अवतार होते हैं कि वह राम, कृष्ण इत्यादि जो कहते हैं, ऐसे अनेक अवतार होते रहते हैं ।

श्रीमोटा : अनेक अवतार होते ही रहते हैं ।

जिज्ञासु : ऐसा ही न !

श्रीमोटा : भाई, जरा जगह देना जयंतीभाई को ।

जिज्ञासु : मुझे घर जाते-जाते थोड़ा ऐसा विचार आया । *मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि भारत (पाण्डव)* (गीता. १६/५) । ऐसा आपने explanation दिया था कि तू शोक मत करना । तू दैवी संपत्ति लेकर जन्मे हो । तो उसमें फिर मुझे विचार हुआ कि *अभिजात* शब्द उपयोग किया है । इससे मुझे हुआ कि तुम एक रस की predominant tendencies लेकर जन्मे हो । ऐसा एक idea आया ।

श्रीमोटा : अभि अर्थात् पहले ।

जिज्ञासु : या प्रति । उसके प्रति ।

श्रीमोटा : सही है ।

जिज्ञासु : यानी pre-tendencies....

श्रीमोटा : मेरे साथ दोस्ती इसलिए ही हुई है ।

जिज्ञासु : तो उसमें ऐसा कहते हैं श्रीकृष्ण कि जो-जो रूप से मुझे भजता है, उसे उस रूप से मैं भजता हूँ । *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्* (गीता ४/११) ।

श्रीमोटा : ये खास महत्त्व शब्द **यथा** पर है । कोई किसी पर नहीं है । 'यथा' पर महत्त्व है । **'ये यथा'** के अनेक अर्थ होते हैं ।

एक **यथा** का अर्थ जितने-जितने धर्म हैं । उस धर्म की भावना अनुसार जिस प्रकार भजे मुझे । उस धर्म की उस भावना अनुसार उसके सामने हाजिर होता हूँ । उसके सामने उस प्रकार साकार होता हूँ । सु ख्रिस्त ख्रिस्ती हैं । ख्रिस्ती की भावना अनुसार मुझे भजे उसके सामने ख्रिस्त रूप से मैं हाजिर होता हूँ ।

मीरां हैं, वह कृष्ण को भजती थीं । वह कृष्णरूप से भजतीं हैं, इससे कृष्ण रूप में हाजिर होता हूँ । उस प्रकार यथा यानी कि जितने-जितने धर्म हैं, उन धर्मों की भावना अनुसार जो कोई मुझे भजता है, उस प्रकार मैं उसे व्यक्त होता हूँ । ऐसा वे कहते हैं ।

दूसरा अर्थ **यथा** का । वह अनेक प्रकार की भक्ति के साधन । ज्ञान के साधन, योग के साधन । कर्मयोग, लययोग, ध्यानयोग, ये सब साधन । जिसके द्वारा **हरि** को हम पा सकें। वे सब साधन दूसरे वर्ग में आते हैं । उन साधनों के अनुसार जो साधन हम लें, उसके अनुसार हमारे सामने वे व्यक्त हो । **यथा... यथा** का दूसरा अर्थ यह । इससे इतने सारे साधन हैं ।

श्रीमोटा : (एक बहन जो दूर बैठे हैं, उनको संबोधन करके) **बेटी ! क्यों ? एम. सी. में हो ? तो इसके पर आकर बैठ न । हों...अ... जगह बहुत है किन्तु ....**

बीच में भक्तों को संबोधन करते हुए पूज्यश्री कहते हैं कि मैं तो कई बार कहता हूँ लोगों को । मुझे यह दर्द नहीं गिन सकते । किन्तु ये जो कई लोग मुझे स्पर्श करते हैं, वह मुझे बिलकुल पसंद नहीं है । उससे मेरे शरीर को नुकसान होता है । किन्तु वह तो किसी के मानने में आये ऐसी बात नहीं है । तो अनेक बार कहता हूँ भाई, छुओ मत । मैं तो एम. सी. में हूँ ! अनेक बार साहब, कहता हूँ । कई बार एक दो बार नहीं ।

यथा पर पहला तो धर्म सब आ गये । हमारी पृथ्वी पर जितने धर्म हैं, उन धर्मों के अनुसार जिसे **यथा** वहाँ अर्थ एक आया । दूसरा **यथा** साधन । जो साधन को महत्त्व देकर हमने **उस**को भजने का किया । उस साधन के अनुसार उस साधन में जो हेतु और भाव है, उसके अनुसार **यथा** ।

'तांस्तथैव भजाम्यहम्' उस प्रकार ही उसमें से आप यदि उसकी समग्रता आप स्वयं लाओ तो वह समग्रता में आये । कि सब होकर मुझे भगवान की समग्रता में नहीं आये यह ख्याल रखने का है हमें ।

यथा मां प्रपद्यन्ते ।

यथा में यदि आप समग्रता ला सके हो तो समग्रता– अन्यथा नहीं साहब । इससे दूसरा प्रकार साधन आये । वे साधन सब-सब की प्रकृति के अनुसार हैं । किन्तु इस कलियुग में या इस काल में भक्ति के सिवा दूसरा कोई सरल मार्ग नहीं है ।

ज्ञान की भी मना की है कि ज्ञान में साधना रही नहीं है ऐसा नहीं । हाँ । वह जैसे मानते कि मन के साथ संबध है । मनादिकरण के साथ इन सब को संबंध है, यह बात सच है । किन्तु उसमें साधना रही हुई है । ज्ञान में कहते हैं साधना नहीं है, ऐसा नहीं है । Complete **उस**के साथ awareness रखने के लिए कोई न कोई साधन रहा हुआ है । उसमें भी वे सभी **साधन माँग लेते हैं शुद्धि । अंतःकरण की ।**

ज्ञान के मार्ग पर यदि जाना हो आपको । तो शुद्धि अनिवार्य। उसके सिवा नहीं चल सकेगा । मैं तो दिखाता ही नहीं किसी को । कहता हूँ भाई, मुझे तो आता ही नहीं । भगवान का नाम ही आता है ।

किन्तु मैं तो .... मैं तो ये जो कहते हैं न कि श्वास के... जो कहते हैं न । प्राण । वह भी मना ही करता हूँ । कि हमारे

ये जो असल तो हमारा धर्म । प्राणायाम का मूल जो हेतु है । **कि जिसने बिलकुल संसार भोगा नहीं है । जिसके फेफड़े उसी तरह के मजबूत है, उसके लिए ही ।** ब्रह्मचारी के लिए प्राणायाम है । किसी भी संसारी के फेफड़ें उसके लिए लायक ही नहीं है । किन्तु आज तो सब पीछे पड़ गये हैं । संसारियों के लिए । साधु-संन्यासियों प्राणायाम करने लगें हैं ।

किन्तु उसका मूल सिद्धांत ही यह है कि संपूर्ण नैष्ठिक ब्रह्मचर्य है । तो कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य है । भगवान मिल गये हैं तो गलत बात । सर्वगुणसम्पन्न हो तो भी उसे भगवान नहीं मिले होते हैं । उसे साधना करते देर नहीं लगेगी । भगवान को प्राप्त कर लेते उसे देर नहीं लगेगी । उसे भक्ति, ज्ञान जल्दी हो जाय । किन्तु उसे साधना तो करनी ही पड़ेगी । **और ब्रह्मचर्य हो तो तेजी से कर सके । किन्तु उसके (ब्रह्मचारी के) लिए प्राणायाम । दूसरों के लिए ये फेफड़े लायक ही नहीं है ।**

जिज्ञासु : यानी ब्रह्मचर्य अनिवार्य ?

श्रीमोटा : अनिवार्य !

जिज्ञासु : Condition सही ?

श्रीमोटा : Condition सही, किन्तु संसारी के लिए नहीं है । वह भगवान की भक्ति कर सकता है । किन्तु वह मास में एक बार या दो बार ही । कि वह पति-पत्नी का कर्म कर

सकता है । किन्तु **उसे यदि छटपटी हुआ करती हो तो वह नालायक है भक्ति करने के लिए । क्योंकि संबंध हुआ न मनुष्य को । कि ना गिरा ? तो वह नालायक है ऐसा समझ लेना । क्योंकि वह छटपटी उम्र के साथ रही हुई नहीं है । चाहे जितनी उम्र हो गई हो तो भी वह छटपटी रहती है । वृद्धावस्था में ज्यादा होती है । ऐसा मैंने कइयों को मेरे साथ इकरार करते मैंने अनुभव किया है । इकरार करते हैं ।**

तो मूल बात समापन कर लूँ । **यथा....** तब समग्रता उसमें है नहीं साधन में । तो कि समग्ररूप से ख्याल नहीं आएगा ।

जिज्ञासु : *मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः* (गीता ४/११) । हे पार्थ, सर्व प्रकार से मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं । तो उस पंक्ति के साथ वह किस तरह जुड़ता है ?

श्रीमोटा : वह उस अर्जुन को संबोधन करके कहा है । वह उसे ललचाने के लिए । कि सभी मेरा अनुसरण करते हैं । और अकेला तू किनारा कर गया ? मेरा दोस्त होकर ! मैं ऐसा कहूँ कि मेरे ईश्वरभाई हैं । मेरे दोस्त । अनेक वर्ष हम साथ में रहे थे आश्रम में । अबे, ईश्वरभाई, मुझे हजारों लोग मदद करते हैं और तू मुझे मदद नहीं करता ऐसा कहूँ न उसे ? उस तरह भगवान कहते हैं यह ।

कि दो जनों की बातचीत रखी है यह। भगवान को अर्जुन को अपने प्रति खींचना है। दोस्ती तो नहीं थी। साधारण थी। नहीं थी नहीं। किन्तु ऐसी जबरदस्त नहीं थी कि एकदूसरे को ऐसी पल-पल मन में आकर्षण जीताजागता सभानतावाला रहा करता हो चेतनात्मक। ऐसा न था। इतनी मित्रता थी सही। उसकी ना नहीं है। किन्तु जो उसका पिछला भाग आता है कि सभी लोग..... आप ही विचार करो कि हम अनुसरण करते हैं ? उस प्रकार करते हैं ?

श्रीमोटा : दूसरा श्लोक बोलो आप।

जिज्ञासु : *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः
(गीता ४/११).

श्रीमोटा : तो ऐसा हो तब न ! ऐसा साधन करके मुझे मैं उसे ... जिस तरह जो कोई मुझे भजता है, उसे मैं उस तरह भजता हूँ। तब... तब ऐसे लोग मुझे जानते हैं। ऐसा.... ऐसा करके उसे बिठाया जाय। जो लोग जिस तरह मुझे भजते हैं, उस तरह उसे मैं भजता हूँ। ऐसा उस मनुष्य को अनुभव हो जाय। सामनेवाले मनुष्य को। तब वह भगवान को अनुसरण करता हो जाता है। संसार में, व्यवहार में, कर्म में सब में। कर्म किये बिना किस तरह आपको समझ में आनेवाला है ? कर्म किये बिना।

जिज्ञासु : आपने **यथा** का जो पहला अर्थ किया है, वह बहुत अच्छा लगा और उसके साथ। उसकी संगति मुझे अभी

इस तरह लगती है। सच्चा या गलत आप कहोगे कि क्राईस्ट यानी ये क्रिश्चानिटीवाले। हम चाहे जिस धर्म के हो, जिस तरह आते हैं, उसे मैं उस प्रकार से भजता हूँ। वे सभी मार्ग वे **मुझे** ही मिलने के मार्ग हैं।

श्रीमोटा : अवश्य।

जिज्ञासु : ऐसा फलित नहीं होता इसमें से ?

श्रीमोटा : इसमें होता है ही। सभी मार्ग मुझे ही मिलने के हैं। अनेक नदियाँ।

जिज्ञासु : हाँ। ऐसा ही लगता है।

श्रीमोटा : समुद्र में ही मिलती हैं।

जिज्ञासु : अभी यह स्फुरण होता है।

श्रीमोटा : अनेक नदियाँ समुद्र में ही मिलती हैं। उस तरह अलग-अलग धर्म जो हुए उसके कारण ही। क्योंकि उस-उस काल में। वे-वे लोग जो थे। उनके जो भी वातावरण में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् वह जितनी संभावना थी। ग्रहण करने की मर्यादा थी। उतने ही प्रमाण में उन लोगों ने कहा।

उसका अर्थ ऐसा नहीं कि हमारे धर्म में जो ज्ञान है, उतना ज्ञान उनमें नहीं था। किन्तु संपूर्ण ज्ञानी। किन्तु जैसे हम संसारव्यवहार में किसी को पाँच चाहिए हो तो पाँच ही दें। उनको कोई पाँच लाख नहीं दे देंगे। जिसे जितना चाहिए और हजम कर सके उतना ही हम दे सकते हैं। उस तरह इन ज्ञानी

पुरुषों ने उस देश के लोगों को उस काल की उसकी जो मर्यादा थी उसी अनुसार लोगों को ज्ञान दिया ।

महंमद पयगंबर साहब हो गये । उस प्रकार व्यवस्था की । तो जो भी किया । तो उस काल के संजोग, उस काल के समाज का वर्तमान मानस, जो उसकी आदतें, अभ्यास, उसके संजोग, उसके रीतिरिवाज और उसका मानस कितना ग्रहण कर सकता है, उतने प्रमाण में कहा । वह ज्यादा तो ग्रहण नहीं कर सकते ।

और मुझे इतने सारे धर्मों का अभ्यास नहीं है । किन्तु साधारण सा ऐसा अभ्यास है । उस पर से कहता हूँ **कि हमारे देश का मानस बहुत ऊँचे प्रकार का । बहुत ऊँचे प्रकार का । आज भी आंतरिक रीति से हमें जितना समझने की ..... समझने की हमारी प्रेमभक्तिपूर्वक की तत्परता है, वैसी आज किसी देश में नहीं है ।**

ऊँचे से ऊँचा ज्ञान आज भले हम अनुभव करते न हों । हम उसका अभ्यास करते हों । साधन न करते हों, किन्तु उसे समझ सकने की हमारी तैयारी है । ऐसे अनेक आदमी हैं हमारे देश में । दूसरे देशों में ऐसे आदमी शायद कोई । प्रमाण तो बहुत ही कम । और वह प्रमाण भी हमारे प्रमाण के साथ तुलना नहीं कर सकते हैं उस प्रकार का । यह मेरे मन में इस बारे में दो मत नहीं है । किन्तु मुझे स्वयं को ऐसा लगता

है कि मेरे देश की ऐसी परिस्थिति है । उसका कारण कि धर्म की भावना जीवंत नहीं है । सुषुप्त है । मर गई नहीं है साहब ! सुषुप्त है । धर्म मर जाता नहीं ।

फिर **यथा** पर आयें । इससे सभी धर्मों की बात की । दूसरा साधन आये । और तीसरा भाई, सब तो ऐसे साधन कर सकते नहीं कुछ । ये तीसरा संसार आये । तो संसार में पुत्र, मित्र, पत्नी, परिवार, दादा, मामा, चाचा जो संबंध हो तो साला, उस रीति से भी भगवान को भजा जा सकेगा । कोई कहे की मेरी पत्नी, कोई कहे मेरे पिता, कोई कहे मेरा मित्र, कोई कहे कि मेरा बेटा । जिसे जो समझ वैसा करे न ! उस तरह करे । तो उसे उस प्रकार से समझ में आएगा । इसलिए वह इतना है और ऐसा ही है ऐसा नहीं ।

समाप्त

● ● ●

जिज्ञासु : विचार की कतार हो जाय उसे trace back करना या नहीं ? अलग-अलग समय पर अलग-अलग स्थल पर पड़े हुए संस्कार सब एक साँकल में जुड़ जाते हैं ।

श्रीमोटा : इसमें हो सके उतनी स्वस्थता हमें रखनी है । जो आये, उगे उसे अखंड आकार दिये बिना या उसमें आये हुए या उगे हुए विचार को दूसरे उसकी जाति के विचार का अंक हमें स्वयं से जोड़ना नहीं है । अलबत्ता, ऐसा होना कठिन है, किन्तु ऐसा जीवंत प्रयास विकसित करना है ।

विचारों को trace back करने की तो जीवन की एक कला है । और इसी पद्धति के कारण बौद्ध मार्ग में पूर्वजन्मों को जानने की योग की पद्धति खोजी हुई है ।

जिज्ञासु : रात को गुरु की भावात्मक चेतनाशक्ति में लक्ष्य हृदय से रखते हुए सो जाएँ । इसके concrete अनुभव के लिए ज्यादा स्पष्टता मुझे चाहिए ।

श्रीमोटा : रात को सोते समय हृदय में गुरु की चेतनाशक्ति भावात्मक रूप से रहे, इससे हृदय में उसका सन्निवास है, वह जीवन में जागृत हो, सावधान हो, प्रकट हो, सर्व कर्म अंदर बाहर में चेतना रूप से शक्ति के आविर्भाव रूप से और भाव के वहनात्मक रूप में या गति रूप अनुभव हो सके ऐसा बनो । और उसका चेतनात्मक प्रेरणात्मक हो सके ऐसा सूक्ष्म चेतना देह का अनुभव होने के लिए प्रार्थनाभाव में सोएँ । उनकी भावचेतनाशक्ति हमारे आधार में जहाँ-जहाँ अशुद्धि हो, वहाँ स्पर्श करे । जहाँ-जहाँ जो-जो भाग में अशुद्धि का स्पष्ट भान हो, वहाँ-वहाँ ध्यान द्वारा उस शक्ति का स्पर्श अनुभव करने के लिए वहाँ लक्ष्य एकाग्रता से– केन्द्रितरूप से उस जगह पर प्रार्थनाभाव में रखा करें । ऐसे अनेक प्रकार से उसका भक्तिज्ञानभाव से उपयोग किया करना ।

सूक्ष्म चेतना देह से भी बराबर स्पष्टता न आ सके तो उसके स्थूल भी– केवल स्थूल संबंध से भी उसमें रही हुई जो चेतनाशक्ति है और जो भावमय है, उसके साथ

स्थूल स्वरूप से रात को सोते समय या किसी भी पल में नकारात्मक विचारों की पल में उसे हृदय समक्ष प्रकट करना ।

जिज्ञासु : आपके साथ के संबंध ने मुझे सिखाया है कि अखंड, अविरत रूप से, अनन्यभाव से, अव्यभिचारी रूप से और सर्वभाव से परमात्मा का स्मरण होता हो वह प्रथम सीढ़ी है, उसमें संकल्प-विकल्प उठते बंद हो जाते होंगे न ?

श्रीमोटा : उसमें तो फिर ऐसी स्थिति उपजे कि शब्दमात्र में हरि:ॐ सुनाया करे वैसी सहज स्थिति बन जाय ।

● ● ●

॥ हरि:ॐ ॥

श्रीमोटा-वाणी [६]

श्रीमोटा की पावन ध्वनिमुद्रित वाणी

(दिनांक ३-५-१९७४ के दिन पंचशील सोसायटी अहमदाबाद में श्री जयंतीभाई पटेल के घर पर श्रीमोटा के साथ श्री अनुपराम भट्ट ने की हुई सत्-चर्चा की पावन ध्वनिमुद्रित-वाणी)

• श्रीमोटाआदेश •

लीक पर मत चलो। समाज में जो लीक पर चलते हुए काम होते हैं वैसे काम नहीं; परंतु मौलिक काम करने चाहिए।

जहाँ तक समाज में गुण और भाव विकसित नहीं होंगे, वहाँ तक समाज उन्नत नहीं होगा। इसलिए हमें तो गुण और भाव के उत्कर्ष के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।

अनाज-पानी के अकाल के लिए समाज में रही हुई दयावृत्ति से लोग मदद करेंगे ही। **किन्तु गुण और भाव के अकाल को समाज नहीं समज सकता है। तो गुण और भाव के अकाल के निवारण के लिए प्रवृत्तियाँ ही आरंभ करना चाहिए।**

(श्रीमोटा के साथ की बातचीत से)

: अनुवाद :

भास्कर भट्ट **रजनीभाई बर्मावाला 'हरि:ॐ'**

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

॥ हरिः ॐ ॥

• विषय-सूचि •

१. श्रीमोटा के साथ श्री अनुपराम भट्ट साहब की सत्-चर्चा ७१
२. जल और पृथ्वीतत्त्व में चेतन का अवतरण नहीं होता.... १०२
३. योग की भाषा में संयम १०४
४. स्वार्थ की सभानता की तरह सद्गुरु की सभानता प्रत्येक कर्म में रखो १०५
५. सद्गुरु का स्मरण रखने के लिए उपाय १०६
६. नकारात्मक वृत्तियाँ उठे उस समय प्रार्थना, भजन, स्मरण करो १०७
७. *मोटा* को पैर पड़नेवाले *मोटा* का काम करे तो सच्चे पैर में पड़े १०८
८. *मोटा* का काम *मोटा* को स्वयं में जीवित करने के लिए करो १०९
९. *मोटा* का काम *मोटा* की भावना जगाने के लिए करो... १११
१०. गीताजी के श्लोक की समझ ११२
११. भगवान के साथ संबंध बाँधने के लिए साधन करो..... ११४
१२. दूसरों के बारे में सोचना छोड़कर स्वयं के बारे में सोचो ११७
१३. अभ्यास और वैराग ११८
१४. सर्वारंभपरित्यागी का अर्थ ११९
१५. गीताजी के श्लोक की समझ १२२

• • •

॥ हरिः ॐ ॥

उद्घोषक : दिनांक ३-५-१९७४ के दिन पू. श्रीमोटा ने श्री इन्दुकुमार देसाई द्वारा श्री अनुपराम भट्ट साहब को संदेश भेजकर सत्चर्चा के लिए बुलाये थे । तब पंचशील सोसायटी, अहमदाबाद में श्री जयंतीभाई पटेल के घर पर श्री अनुपराम भट्ट ने पूछे हुए प्रश्नों द्वारा श्रीमोटा के साथ की हुई सत्-चर्चा का यह वृत्तांत है ।

जिज्ञासु : अनुभवी को शरीर के सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं क्या ?

श्रीमोटा : रामानुजाचार्य या वैष्णव संप्रदाय के आचार्य ऐसा कहते हैं कि देह है, वहाँ तक सुख-दुःख है । अर्थात् उसको मुक्ति नहीं है । किससे मुक्ति नहीं हैं ? सुख-दुःख से । इसका अर्थ ऐसा नहीं कि काम, क्रोधादि या प्रकृति नहीं है । ऐसा अर्थ नहीं ले सकते और शंकराचार्य ने किसी जगह लिखने में ऐसा नहीं बताया होगा । मैं तो मानता हूँ शंकराचार्य भी देह है । स्वयं देहावस्था है उसकी और विदेहावस्था कहते हैं वह बात बाद में हम करेंगे ।

किन्तु देहअवस्था है .... वह देहअवस्था है, वहाँ तक प्रकृति है और प्रकृति के गुणधर्म उसे हैं । सिर्फ ज्यादा से ज्यादा क्या कि लिप्त न हो जाय । उसमें डूब न जाय । शहद के अंदर मक्खियाँ डूब जाती हैं वैसा डूब न जाय । उसमें लिप्त

न हो जाय । तद्रूप न हो जाय और मानो कि तद्रूप हो जाय– तद्रूप । तो अनुभवी पुरुष तद्रूप नहीं होगा तो अनुभवी नहीं ।

संसारी मनुष्य इतना तद्रूप नहीं होगा । संसारी मनुष्य की शक्ति, ताकत नहीं तद्रूप होने की । अनुभवी की वह शक्ति है । जैसे चेतन पेड़ के साथ पेड़रूप हो जाता है । जल के साथ जलरूप, पशु के साथ पशु । उसी तरह अनुभवी पुरुष संपूर्ण तद्रूप हो जाय उसके साथ । फिर भी अलग रहता है ।

उस तरह अनुभवी तद्रूप हो जाय । किसी के साथ । तो तद्रूप हो जाय हम किसी के साथ तो दूसरा क्या बनता है ? कि एक संसारी मनुष्य तद्रूप हो और वह अनुभवी तद्रूप हो तो दोनों के तद्रूप होने में क्रिया एक की एक है । किसी को कुछ बदलाव तो लगना चाहिए । जबरदस्त बड़ा प्रसिद्ध से प्रसिद्ध सटोरिया हो और धंधा ले हाथ में किन्तु कह देता है.... या तो व्यवहार में ..... उसी तरह अनुभवी पुरुष तद्रूप होता है । किन्तु तद्रूप होता है ।

प्रकृति में द्वन्द्व और गुण आये । अब द्वन्द्व और गुण यदि आये तो फिर सुख-दुःख आये या नहीं ? नीति-अनीति । ये सब युग्म । द्वन्द्व के युग्म आये या नहीं ? तो अब शंकराचार्य क्या कहते हैं, वह जानता नहीं हूँ । वे विदेहमुक्ति किसे कहते हैं, वह मैं नहीं जानता हूँ ।

विदेहमुक्ति यानी जीवित-जागृत चेतन के जैसा अनुभव स्वयं करना । होती है उसे । किन्तु विदेहमुक्ति यानी मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि विदेहमुक्ति यानी शरीर की कोई

भी प्रकृति का लक्षण उसमें हो नहीं । वह यदि विदेहमुक्ति कहलाती हो तो वह सिर्फ काल्पनिक है । Reality उसमें किसी दिन आ सकती नहीं और **शंकराचार्य की मुक्ति का अर्थ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहम्, रागद्वेष से मुक्ति । यानी कि प्रकृति की पकड़ से मुक्ति, किन्तु उसका अर्थ उसमें से प्रकृति चली ही जाय ऐसा मुझे तो लगता नहीं है । क्योंकि संभव ही नहीं । अनुभवी को शरीर है ।**

शरीर का वह गुलाम नहीं फिर हं...अ... शरीर । होना.... उसका शरीर होते हुए भी शरीर का गुलाम नहीं है । वहाँ तक ठीक है । किन्तु ऐसा कि अनुभवी हुआ ।

शंकराचार्य भगवान ऐसा कहते हैं कि अनुभवी हो, उसे सुख-दुःख ही नहीं हो । सुख-दुःख में हो, किन्तु उसमें डूबता नहीं ऐसा बन सकता है । उसमें उसे ज्यादा लगे नहीं । लगे नहीं यानी कि उसे दुःख आदि हो, इससे व्यथित न हो, चिल्लाता नहीं । ओ बाप रे ... मर गया । मर गया ऐसे चिल्लाता नहीं । वह सब सही किन्तु वे यदि मोक्ष को ऐसा कहते हो कि उसमें सुख-दुःख ही नहीं शरीर के हाँ .... क्योंकि आखिर तो हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् जो हैं, वे मनादि..... उस आधार से भी जुड़े हुए हैं । आधार से जुड़े हुए न हों, तो कोई कुछ कर्म हो ही नहीं न ! वे आधार से जुड़े हुए हैं । ऊर्ध्व में भी जुड़े हुए हैं और अनुभव होने से समत्व धारण किया हुआ है ।

समत्व जीवंत रखकर उभय का सिंचन करता है ।

इससे शंकराचार्य भगवान ने अनुभव की कक्षा में सुख-दुःख आदि ही नहीं होते । मेरे मन में कि उसे मनुष्य है । उसके मनादिकरण हैं । अनुभवी के । **वे सुख-दुःख होते हुए भी सुख-दुःख होते हुए भी सुख-दुःख से लिप्त नहीं होते । उसका उसे बंधन नहीं है । या तो दूसरी तरह हम विचार करें । गीता का आधार लें कि वह दृष्टा है । साक्षी है । कि किस का साक्षी हो वह ? कहीं कुछ हो तो साक्षी या ऐसे ही साक्षी ? कहीं कुछ होना चाहिए न ? तो वह साक्षी ।**

तो अब आप यदि पूरा concept कहो कि शंकराचार्य भगवान यों कहते हैं । मुझे वह बात याद आती है उनकी । शरीर है, वहाँ तक सुख-दुःखादि रहेंगे । ऐसा हमारे भक्ति संप्रदाय के आचार्य कहते हैं । यह सौ प्रतिशत की बात सच्ची । चाहे जैसा बड़े से बड़े अनुभवी अभी तक हो गये हैं । सभी को है । **रामकृष्ण को तो स्वयं देखा हुआ केन्सर । रमण महर्षि को दर्द होता था, तब मुँह पर आनेवाले बदलाव मैंने देखे हैं । गया था । दर्शन करने ।** एक साधु ले गये थे । नारायण स्वामी हिमालय के थे । आप ठीक नहीं करते । हम नहीं जाएँगे ऐसे लोगों के दर्शन को दूसरे लोग किस तरह जाएँगे ? तो हमें उदाहरण रखना चाहिए । कि आप तो पाँच-दस मोटर लेकर निकलोगे और मुझे कोई मोटर-बोटर देगा नहीं । आज की बात अलग है । आज फिर भी माँगु तो कोई दे भी ।

इससे मुझे अनुकूलता नहीं प्रभु । और काम मेरा मन में पहले । हम उसमें सीखे थे कि **भगवान भी कर्म करते हैं । तब उनको भी दर्द होते मैंने स्वयं देखा है । मुँह पर बदलाव दर्द से । किन्तु वह बदलाव होते हैं, शरीर के कारण से । किन्तु वे बदलाव होते हैं शरीर के कारण से, किन्तु उससे मन उनका .... सभानता से अलग है ऐसा नहीं गिना जा सकता ।**

आज मुझे भयंकर से भयंकर दर्द हो रहा हो तो मैं भजन लिख डालूँ । फिर मैंने अनेक इसके प्रयोग किये । कि ये मैं गप मार रहा हूँ या सचमुच ये हकीकत हैं ? मैं लिख डालूँ । दो-चार-पाँच लिख डालूँ । यह मेरा स्वयं का अनुभव है । सख़्त से सख़्त दर्द होता हो । इस साहब को मैं धन्यवाद देता हूँ। उसने मेरी कदर की .... मेरा ओपरेशन करने का था, तब साहब को मैंने लिखवाया था । तब मैं सद्गुरु पर लिख रहा था । **यानी कि सभानता उसकी हरि के साथ किसी काल उस सुख-दुःखादि के कारण टूटती नहीं है ।** किन्तु उससे सुख-दुःखादि हो ही नहीं ऐसा प्रश्न शंकराचार्य भगवान कहते हो .....

जिज्ञासु : मैं आपको यह कहता था की श्रीरामानुचाजार्य ऐसा कहते हैं कि जीवनमुक्ति जो शंकर मानते हैं, वह है ही नहीं । क्योंकि कर्म के निमित्त से जो शरीर धारण करना पड़ता है, वह शरीर उसने धारण किया होता है अनुभवी ने भी । इससे सुख-दुःख उसे अनिवार्य रूप से होते ही हैं, ऐसा रामानुचाजार्य कहते हैं और यह होने के कारण वह जीवनमुक्ति

नहीं है उसकी । क्यों नहीं ? वे बाद में ऐसे उपनिषदों इत्यादि के क्वोटेशन ऐसे करते हैं । तो वे कहते हैं—

अशरीरम् वा वसंतम् नप्रियाप्रिय पुषतः ।

जो अशरीर बनते हैं, वे तो मुक्त बनते हैं और प्रिय और अप्रिय, सुख और दुःख का स्पर्श होता नहीं । यह क्वोटेशन लेते हैं ।

उपनिषद् का वाक्य मैं बोलता हूँ । ये उपनिषद् का ऊपर है वह क्वोटेशन देकर फिर बात करते हैं । मुक्तावस्था क्या ? तो उपनिषद् का क्वोटेशन दिया ।

अशरीरम् वा वसंतम् नप्रियाप्रिय पुषतः ।

जहाँ तक शरीर है; वहाँ तक प्रिय और अप्रिय का नाश होता नहीं है । अर्थात् सुख-दुःख का sensation नाश होता नहीं है । उस प्रकार दूसरा कहा है कि –

अशरीरम् वा वसंतम् नप्रियाप्रिय पुषतः ।

जो अशरीर बनता है, उसे प्रिय और अप्रिय अर्थात् सुख और दुःख का स्पर्श होता नहीं । इस प्रकार कहा ।

अब जब अशरीर अवस्था का लक्ष्य ऐसा है, वैसा रामानुजाचार्य कहते हैं । तब जीवनमुक्त दशा वह संभव ही नहीं । क्योंकि शरीर तो होता ही है । अनुभव । शरीर तो होता ही है । और शरीर होने के कारण उसे सुख-दुःख होता ही है । इसलिए विदेहमुक्ति संभवित है । विदेहमुक्तावस्था संभवित है । किन्तु यह अवस्था जीवनमुक्ति की संभवित नहीं है ऐसा रामानुजाचार्य कहते हैं ।

अब शंकराचार्य ऐसा कहते हैं कि नहीं ..... जीवनमुक्ति की अवस्था संभव है । जीवनमुक्ति यानी क्या ? यानी वे ऐसा कहते हैं कि देहाभिमान का नाश । यह ऐसा शंकराचार्य कहते हैं । यानी देह है सही । किन्तु उसमें देह मैं हूँ, देह मेरा है, इस प्रकार का ध्यास या अभिमान उसका नाश हुआ होता है ।

श्रीमोटा : बराबर है साहब ।

जिज्ञासु : वह शंकराचार्य का stand है । फिर वे कहते हैं । उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति है । वह बहुत धनवान है । अब उसने संन्यास ले लिया । धनवान है बहुत । और उसका धन चोरी हो गया । लूंट लिया गया । इससे उसे दुःख होता है । क्योंकि धन में उसका अभिमान है । ममत्व इत्यादि है । किन्तु जब संन्यास लेता है । संन्यास लेता है, उसके बाद उसे उस धनापहार.... धन चला जाय उसके कारण दुःख होता नहीं है । क्योंकि उसमें उसका अभिमान उस बारे में रहता नहीं है । उसी तरह किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति ने कुंडल पहने हुए हैं । कुंडल पहने हुए हैं उसने । अब मैं कुंडली हूँ । मैं कुंडलवाला हूं । ऐसा उसे अभिमान रहा करता है । और उसका सुख रहा करता है । तो कुंडल चले गये उसके और उसके बाद उसे उस प्रकार का दुःख होता नहीं है । इससे सुख-दुःख वह देहाभिमान के कारण है, ऐसा वह कहता है । **इससे देहाभिमान चला जाता है जीवनमुक्त को । उसके बाद वह सुख-दुःख रहित अर्थात् अशरीरावस्था ही है । शरीर हो वही**

शरीरावस्था नहीं, किन्तु शरीर हो फिर भी देहाभिमान चला गया हो, वह मनुष्य अशरीरावस्थावाला है यानी मुक्त ही है ऐसा श्रीशंकर का कहना है ।

श्रीमोटा : वह बराबर ।

जिज्ञासु : और उसे वे जीवनमुक्त दशा कहते हैं ।

श्रीमोटा : ये ऐसा शंकराचार्य नहीं कहते हं...अ... उसे सुख-दुःख न हो ।

जिज्ञासु : अर्थात् यह बात । अर्थात् स्पर्श होता नहीं ।

श्रीमोटा : स्पर्श न हो । किन्तु सुख-दुःख तो होता ही है । सुख-दुःख होता है ।

दूसरी बात जो कहता हूँ कि शायद उसने न की हो । शंकराचार्य ने जाहिर में न की हो । क्योंकि अनुभवी पुरुष हो । संपूर्ण अद्वैत का जिसे अनुभव है, उसे आकाशतत्त्व आगे होता है हमेशा । और आकाशतत्त्व के कारण जहाँ-जहाँ निमित्त हो, वहाँ जाय अपना-अपना शरीर लेकर भी जाता है । किन्तु वह जो शरीर को लेकर जाता है, उसे सुख-दुःखादि नहीं है । उदाहरण के लिए मेरा शरीर यहाँ जयंतीभाई साहब के घर पर है । और यहाँ से मेरे आश्रम में काम पड़ा और गया तो उसे कुछ ही नहीं । बिलकुल नहीं । और ओपरेशन कराऊँ उसका वह भी रह जाय । दाग-बाग-चिह्न रह जाय । किन्तु इसे कुछ ही नहीं ।

जिज्ञासु : यह तो समझ सकता हूँ ।

श्रीमोटा : नहीं यह तो है । बनी हुई हकीकत । सच्ची हकीकत । यह कुछ जाहिर में रख नहीं सकते हम । गप मारते हो । लाईए । साबित करो । वह कुछ उनके लिए यह कोई सिनेमा का खेल नहीं कि साबित कर सके । किन्तु हकीकत की बात है यह । कि आकाशतत्त्ववाले होने से वे शरीर को कहीं भी ले जा सकते हैं । हाजिर कर सकते हैं । स्वयं । और ऐसे कई महात्मा गुजर गये हैं । फिर हाजिर हुए हैं । ऐसा कइयों का अनुभव है । तो वे अशरीरी । उसे मैं अशरीरी कहता हूँ । ऐसा सही । **शरीर होते हुए देहाध्यास जिसका चला गया है बिलकुल । शरीर, किन्तु उसे सुख-दुःखादि ना हो । हमेशा सुखदुःखादि में लिप्त भी नहीं ।**

उदाहरण के लिए मेरे जैसा मनुष्य । मैं तो दवा कराने में मानता हूँ पहले से । दवा करता हूँ । शरीर है । अभी तो प्रत्यक्ष रूप से प्रवृत्ति तो शरीर से ही होती है । मेरी आत्मा को और मन को कौन काका जानता है ? मैं जानता नहीं हूँ । इससे उदाहरण के लिए इतने सारे काम भगवान की कृपा से तिहत्तर लाख के हुए हैं । तो कोई एक हमें जाने । काम के कारण जानते हैं । काम के कारण नाम है । तो उस तरह शरीर है अनुभवी का । प्रकृति fully transform हुई नहीं है । वह जब होगी । **जल और पृथ्वी तत्त्व में चेतन का अवतरण संपूर्णरूप से होगा, तब रोग भी नहीं होगा ।**

जिज्ञासु : इसमें से एक प्रश्न ऐसा उत्पन्न होता है कि जो शरीरधारी अनुभवी है । जो शरीर है । जो शरीर में से निकल

नहीं गया है । ऐसा अनुभवी है तो उसकी.... मैं ऐसा पूछता था कि वह दूसरे जीव से किस तरह अलग होता है ? उसे मन, बुद्धि, इत्यादि होते हैं या नहीं ? यह प्रश्न उठता है ।

श्रीमोटा : उसे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि सभी हैं । उस **जीव** से और इस **जीव** से कुछ अलग नहीं कर सकते । तुलना नहीं कर सकते । **किन्तु हरएक के भोगने-भोगने की रीति में फर्क । संसारी मनुष्य सुख-दुःखादि भोगे और यह भोगे मन, बुद्धि, चित्त द्वारा ही । किन्तु उस संसारी मनुष्य के मन, बुद्धि, भगवान में लय हुए नहीं हैं । इसके लय हो गये हैं । लय हो गये हैं और उसके साथ तद्रूप होते हैं । भगवान के साथ । ब्रह्म के साथ । जो शब्द कहना हो वह । स्वयं का अंतरात्मा कहो । आत्मा कहो । वह आत्मा के साथ संलग्न है और संलग्न होकर भोगता है ।**

मैं करोडाधिपति होऊँ और पाँच-पचास लाख का कर्ज हुआ तो मुझे कोई हिसाब नहीं । और सामान्य मनुष्य हो और पचास लाख का कर्ज हुआ तो खलास । उसी तरह सामान्य मनुष्य भोगता है और एक अनुभवी भोगता हैं । दोनों की भोगने की रीति में आसमान जमीन का फर्क है । यह यदि ख्याल में रखें तो तो अनुभवी को बिलकुल हम नहीं समझ सकेंगे । अनुभवी भोगता है सही । किन्तु दूसरी एक समझने जैसी बात है कि **जीव**दशावाला मनुष्य शरीर से भोगता है । उसके अंदर आशा, इच्छा, कामना, तृष्णा, लोलुपता, अनेक प्रकार की

छटपटी, कामक्रोधादि उसमें नींव में रहते हैं और सब कुछ भोगने के पीछे उसके हेतु की उसकी समझ है । जबकि अनुभवी के पास ऐसा नहीं है ।

तो क्यों क्या करने भोगता है मेरा साला ? अनुभवी मन या चित्त का गुलाम नहीं है । हम गुलाम हैं । संसारी मनुष्य भोगता है, वह मन, बुद्धि, चित्त, प्राण से करके भोगता है । गुलाम की तरह, दास की तरह, जब.... जब वह जो अनुभवी है, उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण उसमें से चले नहीं गये हैं । Sublimation हुए हैं और वह उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण का भी वह गुलाम नहीं है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण इत्यादि ऐसी जो कोई स्थिति है, किन्तु वह सब लम्बा होगा । ये सब समझते नहीं उसमें । किन्तु ये आप लिखना । **तो किसी समय मैं कहूँगा आपको, कि ऐसी स्थिति है कि मन, बुद्धि, चित्त, प्राण के बगैर भी कर्म हो सकते हैं । करते हैं ।** मन, बुद्धि, चित्त, प्राण का बिलकुल आश्रय नहीं । किन्तु यह जो अनुभवी वह तो आश्रय लेता है । **मन, बुद्धि, चित्त, प्राण का और वह (जीवदशावाला) भी आश्रय लेता है । किन्तु वह गुलाम के रूप में । यह (अनुभवी) एक स्वामी के रूप में ।**

स्वंय इंजन ड्राईवर हो, तब इंजन को ४० मील, ५० मील, ६० मील, ७० मील की स्पीड से चलाने की वह सभी कला जानता होता है । वह मास्टर है उसका । इस तरह ये मास्टर के रूप में काम । उसे उपयोग करता है । उपयोग करता है

मैं कहता हूँ हं...अ... और वह (जीवदशावाला) तो उपयोग में आ जाता है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, सभी में सही । प्रकृति है और जहाँ तक शरीर है, और प्रकृति है, वहाँ तक मन, बुद्धि, चित्त, प्राण हैं और हैं और **संसारी का मानस अखंड काल संसार में और अनुभवी का मानस अखंडकाल भगवान में ।**

जिज्ञासु : अब यह तो एक बहुत अच्छा अलग तरह से समाधान मिला । आपने कहा उसमें । शंकराचार्य ऐसा कहते हैं । जीवनमुक्तदशा की बात करते हैं कि जो अनुभवी है, जीवनमुक्तदशा में वह बुद्धि में प्रतिबिंबित मैं चैतन्य हूँ ऐसा वह जानता है । जब कि जो जीवभाव में है, वह मैं प्रतिबिंब उसका प्रतिबिंब हूँ, ऐसा जानता नहीं है । यह उसका बड़ा difference उसने रखा है । वह इस तरह इससे वह उपाधि उसे होती है । बुद्धि के बिना वह हो ही कैसे ऐसा शंकर स्वीकारते हैं और विदेहमुक्त होने के बाद यानी यह देह खत्म होने के बाद वह लय पाता है ऐसा कहते हैं ।

श्रीमोटा : वह बराबर है ।

जिज्ञासु : बुद्धि इत्यादि..... ऐसा वे कहते हैं ।

श्रीमोटा : स्वयं वह खुद भी लय हो जाता है । वह भगवान के एक अखंडकाल एक पूरे ब्रह्मांड के अंदर उसका जो लेयर है, उसके बोलने में, उसके अंदर लय हो जाता है । फिर भी उसका स्वतंत्र अस्तित्व रहता है । क्यों रहता है ? कि जो उसके आगे-पीछे के सब हो, भक्त लोग उसका चिंतन करते

हो, चिंतन करते हो उसके कारण स्वतंत्र अस्तित्व उसका है। अन्यथा है नहीं। अन्यथा नहीं है स्वतंत्र।

हैं नहीं उनका स्वतंत्र अस्तित्व। भगवान के सिवा। **उस**के साथ मिल गये वह मिल गये। किन्तु वे भक्त लोग हैं। जो-जो उसे प्रेमभक्ति से याद करते हैं और उसका भी है कि चाहे जितने ज्ञानी, अनुभवी हुए हो, प्रत्येक के काल के तबके अलग वह हम तय नहीं कर सकते। कर सकते हैं सही। अब सब माथापच्ची में क्यों उसमें हमें घूसने से कुछ लाभ नहीं भाई, किन्तु ऐसा है।

मेरा स्वामीनारायण संप्रदाय लगभग चारसौ, सवा चारसौ वर्ष चलेगा। राम तेरी माया। फिर उसका नूर उतर जाएगा। हमारे वैष्णव धर्म का नूर उतर गया। समर्थ पुरुष, अनुभवी पुरुष थे। विठ्ठल नायकजी तक थे। फिर नहीं है। इसी तरह ये जो पुरुष हुए वे लय होते हुए भी उनका (एक भाई को : बैठो न भाई वहाँ। वहाँ पीछे बैठ सकोगे।) लय होते हुई भी स्वतंत्र existence हो ऐसा लगता है। किन्तु वह भक्तों के कारण। हाजिर भी हुए हैं ऐसे उदाहरण हैं। रामकृष्ण परमहंस शरीर के अवसान के बाद दिखे हैं। रमण महर्षि दिखे हैं। मेरे गुरुमहाराज दिखे तो मुझे प्रत्यक्ष अनुभव इतना सारा कि कहने में कमी नहीं कि बच्चों को भी साक्षी हो सके इतना सारा अनुभव।

इससे ऐसे लोग अशरीरी हैं, वह सच बात हैं। ये तो शरीर के साथ होते हुए अशरीरी। फिर भी कई बार

मैंने मेरी साधना में मुश्किल में देखे हैं । मिला हूँ । स्वयं में । वह शरीर लेकर आता है, उसमें उसे स्पर्शमात्रा नहीं । स्पर्श की मात्रा नहीं उसे । स्पर्शमात्रा जैसे कहें और जैसे गीता में है वह भी नहीं । अलौकिक । शरीर भी अलौकिक । हमारे समान दिखता है, किन्तु तेज से आलोकित । सूक्ष्मदर्शक, आरपारदर्शक और अन्य प्रकार का शरीर । वह शरीर । वहाँ पड़ा हो । आये वह दूसरे शरीर से । वह जो शरीर लाते वह दैवी शरीर । वह आपको बराबर उसे नहीं । किन्तु यह जो शरीर में रहा । जन्म लिया । अनुभव हो तो भी वह सही ।

जिज्ञासु : मोक्ष वह तो नित्य प्राप्त अवस्था है प्रत्येक व्यक्ति को । वह कोई प्राप्त करने की अवस्था नहीं है ।

श्रीमोटा : सामान्य जनमानस में जो प्रचलित बात है कि जन्ममृत्यु नहीं, वह गलत बात । काम, क्रोध, लोभ, मोह, रागद्वेष अहम् इत्यादि से मुक्ति । ऐसा मैं समझता हूँ ।

जिज्ञासु : आत्मानुसंधान वह मोक्ष कहलायगा या नहीं ?

श्रीमोटा : उसके सिवा तो किस तरह से होगा मोक्ष ?

जिज्ञासु : मैं यह प्रश्न करता हूँ कि आत्मानुसंधान यानी आत्मस्वरूप की पहचान जिसे कहते हैं । जो नहीं है । उसके कारण बंधन की अवस्था है । तो उसमें कर्म का क्या उपयोग है ? आत्मानुसंधान की बाबत में उस कर्म की उपासना वह कितने अंश तक useful है इसमें ?

श्रीमोटा : यों जिसे कि आत्मा कहें । हम बोलते हैं वह कोई एक स्थल या कुछ नहीं दिखता या आकार नहीं है । किन्तु ऐसी एक जो परिस्थिति कि जिसमें मन आदि अमुक तरह से सब में मिले हुए होते हुए भी स्वतंत्र रीति से सब का साथ लिए बिना स्वतंत्र रूप से जी सकते हैं । और उसे स्वयं को यों होता है कि अभी जो मैं हूँ, वह मैं नहीं । मेरा स्वरूप अलग है । और इन सब के साथ प्रकृति, पृथ्वी, मनुष्य, कर्मव्यवहार सब के साथ जुड़ा हुआ हूँ । सब से अलग हूँ ।

वैसे भी हम व्यवहार में जो सोचो सब के साथ हिलते-मिलते हो । सब से अलग हो सही । ऐसा आपको लगता है । सब से अलग हो, ऐसा आपको लगेगा ही । किन्तु जीवदशा से लगता है । उस तरह उसे अनुभव होता है । तो अनुभवी का कर्म उसके साथ क्या लेना देना ?

जिज्ञासु : मेरा प्रश्न ऐसा है कि **जीव**दशावाला व्यक्ति है उसको वह प्राप्त करना है । उसमें उसे कर्म की उपासना कितने अंश तक उपयोगी होती है ? वह कहाँ तक होती है ? अर्थात् आत्मानुसंधान करने में **जीव**दशावाले मनुष्य को कर्म किस प्रकार उपयोगी होता है ? कर्म का क्या हिस्सा है ?

श्रीमोटा : मैं तो शास्त्र पढ़ा नहीं हूँ । सामान्य ग्रामीण की बात करता हूँ । एक आपको tendency हुई । वृत्ति । कहीं कुछ भोगने की । वह tendency हुई वह बैठी रहेगी ? कि उस दिशा में ही गति रहती है न ! वह आप उसे खाओगे तब शांत होगी वह । सामान्य जीवदशा में यह होता है । तो उस

तरह हम यदि सामान्य रीति से हरएक मनुष्य को ऐसा ही हो कि वृत्ति जागे वह स्वरूपवाली हो— साकार हो । भोगें । उसके बाद दूसरा । उसमें लग जाय । ऐसे अनंत काल चलता ही रहता है । उसे बदलने की हमारी ताकत नहीं है ।

तो अब ये कर्म रहे । किस तरह उनको अनुभव करना । किन्तु उसका सार हम समझें । कि वृत्ति हुई । तो वह साकार हो । वह गतिशील है । सर्जनशील है । वह बुद्धि स्वीकार करती है या नहीं ? अब हम ऐसे होते हुई भी हमें चेतन होना है । आत्मा होना है ।

अब आत्मा होना है तो मनुष्य को विचार करना चाहिए । स्वयं की प्रकृति का विचार कर लेना चाहिए । कि इस प्रकृति का क्या ? मेरे साले बैठो न अब माथापच्ची क्या ? अब जो है, वह क्या गलत है ? किन्तु ऐसे सब विचार आये । यह बराबर नहीं है । सुख-दुःख, मानहानि यह और वह सब क्लेश और कलह और मुश्किलों का अंत नहीं होता है । परेशान-परेशान । मर गये । मुझे ये नहीं चाहिए.... चला जाएगा । तो इस बारे में तो पर होने की बात की है । अब उससे पर होना हो हमें तो प्रकृति के अलावा-प्रकृति का विषय नहीं । प्रकृति के ऊर्ध्व प्रकार के विषय में हमारा मनन-चिंतन होना चाहिए । हमारे सहज रूप से मन आदि करण में ये सब प्रवृत्ति चला करेगी ऐसा नहीं होगा । मन आदि करण हैं । वह तो कोई ही exceptional **जीव** हो वह करोड़ो में कोई ही होगा । प्रह्लाद जैसा हुआ कि बचपन से उसे राग लगा । ये मेरेसे आपसे ऐसा

होगा नहीं । तो हमें सचमुच जिज्ञासा जागी हो अंदर तो वृत्ति जैसे साकार होती है न या नहीं होती ? तो आपकी यदि भगवान को मिलने की लगन लगी होगी तो वह आकार..... उसका गुणधर्म वह आकार न ले तो ऐसा समझना कि आपकी मंद गति है । जिज्ञासा की ।

आपकी जिज्ञासा हो तो आपको विश्वास होता है कि पाँच-सात बार विचार तो आता है । जिज्ञासा है मेरी उसका भरोसा हो जाय या न हो ? किन्तु तीव्र जिज्ञासा जागी या तीव्र वासना जागे । तो वह जिस तरह साकार होकर भोग कराती है, उसी तरह यह जिज्ञासा । तो वह गतिशील, सर्जनशील और क्रियाशील हो । वह उसका स्वभाव । नदी के पानी के पाट में बहे उस तरह उसका ये स्वभाव ।

अब श्रेयार्थी को, प्रयत्नशील व्यक्ति को सचमुच रीत से जो प्रयत्नशील है, उसे भी मूल में तो जिज्ञासा है ही । यह कोई भी मना कर सकता ही नहीं । और वह जिज्ञासा जैसे-जैसे करके अखंड हो तो उसे कर्म में भी प्रेरित करती है । और दूसरा एक Psychology तो मैं पढ़ा नहीं हूँ । किन्तु जिसका मनन-चिंतन एक-सा, एक ही प्रकार का उसके कर्म में भी वही प्रकार आये । कर्म-कर्म को स्थूल क्यों कहा ? तो मनादिकरण से ही होते हैं । मनादिकरण के बगैर होते नहीं, यह बात तो सब को कबूल करनी पड़ेगी । चाहे कोई भी हो उसे । जब वह मनादि है । तब एक तरफ से मनादि को श्रेयार्थी ब्रह्म के या आत्मा के मनन-चिंतन में रोकता रहे ।

अब मनन-चिंतन रहे वह तो कुछ abstract है । पढ़े लिखे हुए । जानते नहीं है । इससे abstract है । तो आपकी वृत्ति abstract होती है । वह कुछ दिखती नहीं है । वृत्ति साकार होती है । तो यह भी आपकी होगी तो साकार होगी ही । Inspite of yourself यह अलग कर सके ऐसा नहीं है । जैसे श्वासोच्छ्वास । उसे आप किसी भी संजोग में बीमारी-स्वस्थता में चालू ही रहेगा । आपको कैसा रहता है ? कुदरत का स्वभाव उसका । सहज गुणधर्म उसका । इस तरह इसका सहज गुणधर्म कि जिज्ञासा हुई इससे उस प्रकार गतिशीलता रहने की ।

और दूसरा कि सतत जिसका और जिसका विचार या कर्म कर्म में भी वह जो विचार है मानसिक । मन के अंदर । उसमें चाहे जितना श्रेष्ठ से श्रेष्ठवाला मन हो तो भी उसे आप साकार नहीं करोगे, वहाँ तक ढीला रहेगा । इससे मनादिकरण से आप idea जितना साकार करो, उतनी दृढ़ता बढ़ेगी । मन में रहा हुआ जो है, उसे गतिशील, क्रियाशील होकर वह साकार होगा । तब उसकी दृढ़ता पक्की ।

तो इस तरह से श्रेयार्थी जब प्रयत्न करता हो तो उसकी जिज्ञासा होने से ही उस प्रकार उसके कर्म होंगे .... ही । उसमें बदलाव नहीं । और उसके कल्याण में कर्म नहीं होगा तो मनादिकरण की वृत्ति सर्जन नहीं होगी । किन्तु भावना को साकार करने के लिए कर्म essential हैं ।

कोई कहेगा आपके लिए बहुत प्रेम, बहुत प्रेम । अनेकों मुझे कहते हैं, **मोटा,** आपकी बहुत कृपा ! गप मारते हैं लोग । उसके मन में तो बिलकुल न हों । बोल नहीं सकता मैं । मूए, मुझे कहने दो न लोगों को । अकारण बोला करते हैं साहब । आशीर्वाद चाहते हैं । किन्तु मन में आपकी सभानता उसकी रखकर करो । तो मुझे एतराझ नहीं है ।

तब यह नमन करने की प्रथा भी हमारे में बहुत लोग । मैं तो खुश होऊँगा कि भाई ये सब प्रथा प्रारंभ की है । किन्तु लोग अब यह काल बिगड़ा है । कोई समाधान, कोई समझाने जाय तो भी किसी को करना नहीं है । इससे क्या समझे ? किन्तु **नमन करे उस समय सभानतापूर्वक और सही रूप में मेरे हेतु और अहम् को बिलकुल कमजोर करना है । अहम् को मुझे संपूर्ण कमजोर करना है । इसलिए उसकी यह प्रक्रिया है । उस तरह नमन करता हूँ या तो दूसरे जो सत्पुरुष हैं, उसके प्रति सभानतापूर्वक की आप में भक्ति उस समय प्रकट हुई होनी चाहिए । उसकी सभानता होनी चाहिए । कोई भी कर्म सभानता के बगैर निरर्थक है ।** संसार-व्यवहार में कर्म करते हो तो उस कर्म के पीछे की आपकी सभानता रहती है । स्वार्थ कुछ हो तो वह काम करना हो तो स्वार्थ की– उस स्वार्थ की सभानता रहती है । उस तरह इसमें रहनी चाहिए । नहीं रहती हो तो मैं उसे बराबर नहीं गिनता । रहनी चाहिए ।

प्रत्येक श्रेयार्थी को आत्मा का अनुभव करने के लिए जैसे मन की अंदर जिज्ञासा, वह जैसे essential तो यदि वह जिज्ञासा हुई तो उसका second परिणाम वह साकार होना ही चाहिए। न हो तो जिज्ञासा नहीं। जैसे वृत्ति होकर साकार होती है। तो वह भी साकार होना ही चाहिए। कोई न कोई कर्म द्वारा उसका आपको मनन-चिंतन कराया ही करे। उसका अभ्यास कराया ही करे। वर्ना ठिकाना नहीं रहेगा। तू मेरे साथ जुड़ जा। **भगवान तो हमेशा जुड़ा हुआ ही है। हम भूल गये हैं। हम अलग नहीं हैं भगवान से। बिलकुल अलग नहीं है। वह हमें उसका जो सातत्य है। जो अज्ञान के कारण भूल गये हैं। उस अज्ञान को दूर करने के लिए ज्ञान का उपाय है। ज्ञानरूपी तलवार धारण करनी पड़ती है।**

तो कहते हैं भई **मोटा,** आपने contradiction की बात की। बिलकुल humbug। मैंने कहा, बात सच है भई। अज्ञान में है, वह ज्ञान किस तरह आये ? किन्तु हमें बुद्धि है, वह ज्ञान का भाग है। बुद्धि से विचार करके सोच करके हमें कार्य करना है। किन्तु **जो भी कुछ करें उसकी सभानता पहले रखने की। सभानता के बगैर कर्म किया हुआ हो, वह ऐसा कहते हैं कि ऊर्ध्व पंथ में आगे नहीं आता है।**

जिज्ञासु : मेरा प्रश्न फिर आगे आता है कि कहाँ तक कर्म का उपयोग है ? To be stop at a particular point अर्थात् अमुक स्टेज आने के बाद।

श्रीमोटा : कर्म का अब विचार कर लो । अनुभवी है संपूर्ण । यहाँ तक आपको समझ में आ गया । कर्म वहाँ तक सही । उसका अनुभव करने तक । उसमें शंका नहीं रही है न ? चलो, अब यह रहा कि अनुभव हुआ । किन्तु उसे शरीर रहा या नहीं ?

जिज्ञासु : नहीं । मैं वह बात जीवदशावाले की बात पूछता हूँ ।

श्रीमोटा : ओ... हो.... जीवदशावाले ।

जिज्ञासु : अनुभवी की बात नहीं है ।

श्रीमोटा : जीवदशावाले को तो कर्म है है है ही ।

जिज्ञासु : इससे वह आत्मानुसंधान के मार्ग पर गया । वहाँ जाते-जाते ऐसी एक स्टेईज आती है कि जब कर्म और उपासना या जो कुछ करता हो, उसे छोड़ देने की अवस्था आती है ।

श्रीमोटा : आती है ।

जिज्ञासु : उसकी बात है ।

श्रीमोटा : आती है ।

जिज्ञासु : How far?

श्रीमोटा : वह आती है सही और छोड़ देता है सही । किन्तु बाद में अपनेआप automatically चालू हो जाती है । किन्तु आती है सही और छोड़ देता है । इतना ही नहीं साहब । यह तो पहली बार बात कहता हूँ कि अनुभवी पुरुष Master of all कहा गया है । उसे स्वामी कहा गया है । वह भूख,

प्यास के ऊपर भी स्वामी । उसे ऐसे संजोग मिल जाते हैं । तब ८-१० दिन भूख बिना-खाये बिना चलता है । पानी बगैर साहब मेरा अनुभव है । छ दिन तक पानी बिलकुल मिले नहीं । तब भजन-कीर्तन, ये शौच-पिशाब इत्यादि से मुक्ति । किन्तु हमेशा के लिए नहीं । उसे अनुभव हो जाय कि इस बात का मैं स्वामी हूँ– मैं स्वामी हूँ । जैसे हमारे घर हैं । हम स्वामी हों तो उसे तालेबाले मार देतें हैं न ? जब भी खोलना हो, तब खोलते हैं । उस तरह इसे अनुभव होता है सही । साधना के उच्चतर स्तर पर भूख-प्यास आदि से मुक्त रह सकता है ऐसा उसे अनुभव होता है ।

जिज्ञासु : भगवद्गीता में नैष्कर्म्यसिद्धि शब्द का उपयोग है कि नैष्कर्म्यवस्था आती है । कर्म करते-करते तब नैष्कर्म्यवस्था को ही मोक्षावस्था कहते हैं ।

श्रीमोटा : बराबर ।

जिज्ञासु : वह स्पष्ट रीति से कहता है । मुझे कुछ ऐसा स्फुरित हुआ था कि मनुष्य pole-jump करता है । वह पोल लेकर दौड़ता है न ? फिर अमुक तक आता है । इससे बाँस रखकर फिर कूद पड़ता है । वैसे कर्म और उपासना में मेरी बुद्धि अनुसार अमुक तक उपयोगी होते हुए होना चाहिए ।

श्रीमोटा : छूट जाते हैं ।

जिज्ञासु : उस बारे की बात पूछता हूँ ।

श्रीमोटा : छूट जाते हैं । उसके स्थूल कर्म फिर । पहले के कर्म तो आत्मा के अनुभव के लिए । अब कुछ ऐसा है

नहीं उसे । उसे कर्म अनिवार्य नहीं हैं, किन्तु उसे कर्म हैं सही । वह ब्रह्म है । पल-पल सक्रिय है । निष्काम की भूमिका पर सकाम है । ब्रह्म भी । आत्मा की बात करें तो भी वह स्थिति उसकी होती है । तब वह निष्काम होते हुए भी काम करे या ना करे सब समान है ।

जिज्ञासु : तो ऐसा सही ?

श्रीमोटा : कई पड़े रहते हैं हं...अ... किन्तु साहब कई ऐसे होते हैं, कर्म बिना ऐसे ही पड़े रहे होते हैं । फिर भी महान ज्ञानी ऐसे होते हैं ।

मुझे याद है एक प्रसंग । इन सब को समझ में आएगा । डाकोर में गोमती के किनारे एक बाजार में जाते हुए कुआँ आता है । उसके पीछे पड़े रहते थे वे । बिलकुल पागल ही सब कहते उसे । बहुत समय तक । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा कि मगरमच्छ के पास ले जा । तब पैसे तो थे नहीं । पैर में पड़ा कि हुक्म उठाने की तैयारी है । मेरे पास पैसे नहीं हैं । बिलकुल नहीं है ? तो कहा नहीं । तो माँग कर ले आ । मैंने कहा, मैं गरीब आदमी मुझे कौन देगा ? इतनी सारी गरीब अवस्था कि मेरे घर में आओ और मैं दिखाऊँ । तो बिना पैसे मेरे से । तो कि मुफ्त आऊँ आपके साथ । आप बैठो और मैं भी बैठूँ । तो कि नहीं । पैसे चाहिए । तो पैसे मेरे पास नहीं हैं । मेरे पास गहना-पाता आदि नहीं कि बेचकर आपको ले जाऊँ । पैसे चाहिए । जगह दिखाइये मुझे दे ऐसी । पैसे मेरे पास नहीं है । साहब, उस दिन ८-१० आदमी आये और पैसे

छियानबे रुपये हो गये । किसी दिन आते नहीं आदमी । क्योंकि मैं और वे दो जनें अकेले ही रहते थे । गाँव बाहर बँगला रखकर । दूसरा कोई आनेवाला नहीं । मना ही कर दिया था । किसी को आने ही नहीं देने का । दो ही जनें हम । तब दूसरे दिन आदमी आये और पैसे छियानबे रुपये रखे । लिजीये, मुझे कहा, ''बच्चा, देखो पैसा आ गया । अभी तू ले चल ।'' तो कि मगरमच्छ दिखाने ले जा ।

वडोदरा में कमाटीबाग में बड़े मगरमच्छ हैं और खंभात समुद्र है वहाँ शायद हो । कहाँ ले जाऊँ ? वे कहे नहीं दूसरा । वे तो बार-बार बालक के समान सौ बार बोले होंगे । अब मुझे चिढ़ तो चढ़ी थी । बोला करते हो, किन्तु जगह का नाम तो देते नहीं हो । कहाँ मुझे ले जाना है ? नहीं । बस ले चलो अभी । इतना आग्रह करते रहे । चलो, अब चलो । स्टेशन पर आकर आणंद तक की टिकट ली ।

फिर आणंद आया । इससे मैंने महाराज को कहा, कि यहाँ से बड़ा समुद्र आता है । समुद्र में तो मगरमच्छ होते ही हैं । इस तरफ मुम्बई जाता है । वडोदरा है । वहाँ बड़े-बड़े पानी के कुंड हैं । उसमें बड़े-बड़े जबरदस्त मगर हैं । और इस तरफ रणछोडजी का मंदिर है, उस, रणछोडजी को मगरमच्छ कहते हो तो वह वहाँ है । फिर भी जवाब नहीं दिया । यहाँ ले जा ऐसा कहे ही नहीं । वह तो बहुत मुश्किल है, ऐसे लोगों के साथ काम निकालना, हाँ साहब ।

मुझे तो गुरुमहाराज ने सिखाया था । उस तरह हम रहते हैं । इसलिए तकलीफ नहीं आती । **यदि असली हमारी रीति के अनुसार रहूँ तो पलभर भी लोग रखे नहीं साहब मुझे । बिलकुल नहीं रखे साहब ।** सच कहता हूँ । हमें मालूम नहीं था । किसे मगरमच्छ कहते हैं, वह भी मुझे पता नहीं । फिर घूमते-घूमते हम गोमती के किनारे पर कुआँ है । उसके पास उस पर एक आदमी मैला-कुचैला जैसा पड़ा हुआ था । बराबर वहीं पर । बारिश में, ठंड में, धूप में वहाँ पर ही रहता था वह । बारिश में भी । उसके साथ मेरे गुरुमहाराज ने देश-विदेश की बातें की । हमें समझ में नहीं आई थी साहब । कुछ आकाश की और ऐसी सब बातें करे । आप कहाँ सोते हो ? मेरे गुरुमहाराज ने कहा, ''मैं तो आकाश में सोता हूँ । कि आप कहाँ सोते हो ?'' कहने लगे, ''कभी वायु पर, तेज पर, कभी पृथ्वी पर, जल पर, हमेशा का आकाश में सोना अभी हुआ नहीं है ।'' ऐसी सब बात करे । आज तो मैं समझता हूँ, तब नहीं समझता था । फिर मुझे कहे, देखो यह मगरमच्छ है । मैंने तो कहा । यह तो मनुष्य है । किन्तु अनुभव की दृष्टि से मगरमच्छ । अब उसे कौन पहचाने ? कितने सारे वर्ष तक वह डाकोर में था ।

वह कर्म करता है सही । उसे फिर कह गये । मेरी सिफारिश कर गये । इस लड़के को इसलिए आपके पास लाया हूँ कि हमारे पास आ सके ऐसी स्थिति नहीं है उसकी । पैसे नहीं हैं । यहाँ डाकोर पास में है । इससे आपको पूछने करने

आये तो सीधा जवाब दिजीयेगा । बेढंग भाषा में जवाब मत देना । तो कहने लगे दूँगा । तीनेक बार गया था । बहुत सुंदर जवाब दिये थे । किन्तु अब उसे कौन जाने ? ऐसा अनुभवी है कौन जाने ? कोई मानेगा यह ? पढ़े-लिखे की तो बुद्धि की पहुँच ही नहीं वहाँ तक ।

अब ऐसा सब करते । किन्तु वह है । ऐसों के कर्म दिखते नहीं लगते । कर्म दिखते नहीं । किन्तु उसे कर्म है सही । उसे कर्म हैं । मनादिकरण द्वारा वह कर्म करता होता है । उसे अनेकों के साथ संबंध है । निमित्त के कारण । इससे भेद रहता है । जीवदशा में कर्म essential । उसमें किसी को भेद नहीं है । किन्तु अनुभव की स्थिति में categoriesमें फर्क है । कोई लगातार कर्म करता रहता है । कोई न भी हो । तो कि उसे ऐसे ही कर्म चाहिए वैसा भी नहीं ।

जिज्ञासु : अनुभवी के लिए कर्म compulsory नहीं है ।

श्रीमोटा : कर्म हैं सही । किन्तु अमुक ही कर्म । मनादिकरण आये, निमित्त आया, इससे कर्म आया । निमित्त की बात हम स्वीकार करें, इससे कर्म आया उसे । किन्तु कई मनुष्यों द्वारा करते हो । कई प्रत्यक्ष रूप से करे । और कई अपने आप करे । सूक्ष्म भाव से । सिर्फ भाव से होता है । मनादिकरण भी उड़ जाय । सिर्फ एक भाव रहता उसमें । निमित्त की व्यक्ति रहती और स्वयं का भाव उसमें रहता । उस तरह भी करते हैं कर्म । ये अनुभवी पुरुष । तब कर्म रहता है सही । किसी न

किसी प्रकार से कर्म रहता है । किन्तु essential नहीं । बिलकुल essential नहीं । **उसे कपड़े पहनने essential नहीं । वह तो पहने वह कपड़े । लोगों को पसंद ना पड़े इसलिए । वर्ना उसे कपड़े पहनने चाहिए ऐसा कुछ नहीं ।**

● ● ●

उद्घोषक : श्रीमोटा ने अमेरिका-निवासी भाई श्री जयरणछोड सेवक को ध्वनिमुद्रित करके भेजा हुआ यह संदेश है ।

श्रीमोटा : हरिः ॐ आश्रम की शुरू-शुरू में प्रवृत्ति हुई, तब मुझे लगा कि इस तरह की प्रवृत्ति तो चला ही करती है, वह तो मन आदि के साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप से जुड़ी हुई है । भावना के साथ उसे आप सामान्य जनसमाज को किस तरह जुड़ पाओगे ? सामान्य जनसमाज इसमें जुड़े वह किस तरह हो सकेगा ?

आजकल लोग भगवान का नाम ले, धुन चलाये, भजन गाये और इतना सारा सामान्य हो गया है कि उसमें से नये प्राण स्फुरित नहीं होते हैं । अगर अभी समाज में ये भजन, धुन, ये सब सप्ताह और सब चल रहा है, ये यदि सचमुच उसके हेतु की सभानता के साथ भजन की भावना के साथ, जीवन के उठाव का संचार करने के हेतु के साथ यदि यह सब होता तो समाज कभी का ऊपर उठ गया होता । किन्तु सब रूढि के अनुसार होता है । रूढि अनुसार होता है ।

तब मुझे लगा कि हमारे देश में युवानी खिले और उस युवानी में मर्दानगी, साहस, हिम्मत, पराक्रम, धैर्य, सहनशक्ति ऐसे सारे गुण खिले वैसे हम काम लें ।

उसके बाद दूसरे भी ऐसे कई काम किये । किन्तु तब भी तब समृद्धि और कुछ भाषण से नहीं होगी या बोलने से नहीं होगी या लिखने से नहीं होगी । किन्तु **यदि देश को सचमुच समृद्ध करना हो तो रीसर्च, संशोधन होने चाहिए और ऐसा हुआ है । पश्चिम के अनेक देशों में ये जापान, रशिया सभी देशों में जो समृद्धि हुई है, वह इन संशोधनों के कारण ही । वह मेरे मन को इतना सारा सच लग गया है । इससे भगवान की कृपा से ऐसे संशोधन के काम हो ऐसा सोचा है ।**

इस साल भी ऐसे पंद्रह लाख के सभी संशोधन के ही, रीसर्च के ही विषय के काम लिए हैं । इससे आप भाइयों को वहाँ सब हमारे भाइयों उनको मेरी विनती है कि अपने देश को हमें यदि समृद्ध बनाने में हिस्सा लेना हो । हम भी देश के एक नागरिक हैं और नागरिक के रूप में हमारा भी एक धर्म है । यह यदि आप सचमुच आपके हृदय से मानते हो तो ऐसे काम में मदद करना ।

अमेरिका से भी कई लोग कई विद्यार्थीभाई मुझे मदद करते हैं और जयरणछोड हैं वे तो मेरे भगवान के भक्त । हमारे डाकोर में रणछोडरायजी का बहुत बड़ा मंदिर । उसमें ये सेवक भी है । कोई दिन प्रसाद-ब्रसाद देते नहीं हं...अ... । किन्तु

जयरणछोड वहाँ है, इससे मुझे आनंद है। कई बार जयरणछोड को मैं याद करता हूँ। क्योंकि नाम ही ऐसा है कि याद आये ही। याद आये ऐसा है। वहाँ बिराजे हैं। आप सब के बीच और हमारा संदेश वे सब को कहेंगे तो सही।

और हमारे देश को समृद्ध होने के लिए ये जो हम से जो कुछ छोटा बड़ा कम ज्यादा यत्किंचित् जो भगवान की कृपा से काम होता है। **एक हिमालय पर्वत के आगे तिल जितना भी काम होता है, उसमें आपके हृदय की सहानुभूति, सहाय, शक्ति और ठोस मदद मिले ऐसी मेरी आप सब को प्रार्थना है।**

● ● ●

श्रीमोटा : उसे हम जब प्रार्थना करे, तब बहुत मदद मिलती है। और ना करे तो भी। जैसे हमारा पुत्र हो, वह बीमार हो गया हो और जब हम प्रार्थना करते हैं। वह बीमार पड़ा हो। वह हमारे साथ नहीं रहता हो। किन्तु कॉलेज में रहता हो, हॉस्टेल में। किन्तु पता लगे तब तुरत दौड़कर जाते है न ? उसने कहलवाया न हो फिर भी। कहलानेवाला तो होना चाहिए। उस तरह तब सद्गुरु मदद करते हैं। सचमुच, तब उनकी मदद की जरूरत।

इससे देवासुर संग्राम या बाहर के forces भी है। और वह हमारे पर असर करते हैं और अवरोध करने के लिए प्रयत्न भी करते हैं। इससे अवरोध करने का हेतु नहीं होता, किन्तु उदाहरण के लिए फूल खिले हुए हों, उसकी सुगंध अपने आप

फैलती है न ? अपने आप । उसी तरह ये दो तत्त्व हैं । देव और असुर । वे सब सब के स्वभाव के अनुसार ही व्यवहार करते हैं । हम भी क्यों मान लें कि अवरोधकर्ता है । किन्तु हमारे में से कोई being, हमारे मनादिकरण का कोई तत्त्व इतना अभी शुद्ध हुआ होता नहीं है कि जिससे उसे वह पकड़ लेता है । उसे चूस लेता है । यह तत्त्व जो होता है न ! और बाहर के भी इस वातावरण में **इतनी सारी वृत्तियाँ हमें अभी यह आगे जाकर science सिद्ध भी करेगा । कि इस वातावरण में कितने सारे विचार हैं । कितनी सारी वृत्तियाँ हैं । यह मेरे हिसाब से तो सौ प्रतिशत सच है ।**

वह कई बार हमारे दिमाग पर कब्जा कर लेता है । किन्तु शुरूआत के समय में नहीं । आगे जाने पर । तब हमें ऐसा होता है आदमी को, जो श्रेयार्थी है वह हमेशा स्वयं का पृथक्करण करनेवाला होना ही चाहिए । कि यह क्यों वृत्ति हुई ? ऐसी वृत्ति नहीं होनी चाहिए । वह tendency हुई तो विचार करे न ? ऐसी वृत्ति मुझे नहीं होनी चाहिए । इसलिए इस तरह मुश्किल ।

इससे तब वह या तो प्रार्थना करे । या तो दूसरा आसरा ले या तो भजन-कीर्तन में जाय । कारण कि जो हो उससे ऊर्ध्व की तरफ वह गति करे । या तो ध्यान करे । दूसरी रीत से practical ऐसा करे । बैठा न रहे । किन्तु वह..... वह अगली भूमिकाओं में ऐसे सब आते हैं ।

अनेक लोग तो ऐसा कहते हैं कि ऐसे सब हमले आते हैं, हमले आते नहीं। वह तो है ही वातावरण में। किन्तु उसके मनादिकरण में और उसकी भूमिकाओं में कहीं ऐसा कच्चापन होता है। वह सब कच्चापन होने से उसे संग्रह कर लेता हैं। जैसे हमारे स्थूल शरीर का स्थूल चित्त वह द्वंद्व और गुण के संस्कार चूस लेता है। आप इच्छा करे या इच्छा ना करे उसका सवाल नहीं है। Inspite of yourself। जैसे हम श्वासोच्छ्वास लेते ही रहे। इसमें आपके साथ का संबध नहीं हैं। जीवन के साथ का संबंध है। उस तरह वह चूसा जाता है। संस्कार। उस तरह वह चूसा जाता है। और आता है।

इस बारे में श्रेय साधक है सच्चा वह हमेशा पृथक्करण करता है। यह क्यों मुझे विचार आया ? आना ही नहीं चाहिए। मैं जो कक्षा में ... जो धारणा ..... कि यहाँ से मुझे स्टेशन जाना है कि उलटे रास्ते पर चले गये तो कि यह तो कोई रास्ता न हो कि इस आदमी को पूछकर आगे जाय। उस समय वह आदमी ज्यादा जागृत होता है। Alert होता है और alert होकर उसको निकाल देता है।

वह मुझे एक बार हुआ ..... **सही रीति से तो कुदरत की कला और यह हेतु है उसमें। वह इस तरह आपको सामना करने का मौका दे दे कर आपमें उसका अभी सुषुप्त पड़ा हुआ आत्मिक बल उसे प्रकट करना है। यह तो बहुत बड़ी से बड़ी कुदरत की कृपा है कि आपको इस तरह सामना उसका करने का एक मौका देकर आपमें रहे**

हुए आत्मिक बल को वह प्रकट करता है । मैं तो इस तरह लेता रहता हूँ ।

वह वातावरण में है सही । देव और असुर दोनों तत्त्व हैं । अनेक प्रकार के विचार, वृत्तियाँ वह भी सब है । वह सब है सही । किन्तु जो सचमुच प्रयत्नशील है उसे आता है । सौ प्रतिशत सब किसी को यह सब शुद्ध हो गया होता नहीं किसी का । समर्पण किया करे । सब किया करे । तो भी । जैसे हमारा शरीर है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण तक चेतन उतर सकता है । किन्तु शरीर के अंदर नहीं उतर सकता है । शरीर के रोम-रोम में, अणु-अणु में, नस-नस में वह नहीं उतर सकता ।

• जल और पृथ्वीतत्त्व में चेतन का अवतरण नहीं होता •

वहाँ उसे अब जो सब लोग अन्य लोग कहते हैं, वैसा मैं नहीं कहता । अवरोध नहीं है । चेतन को अवरोध क्या ? मेरे में अक्ल है या नहीं है ? चेतन को अवरोध क्या ? मैं नहीं कहता उसे । किन्तु उसके मनपसंद जहाँ.... नरक के लोंदे पड़े हो दो दो फीट ऊँचे और वहाँ बिठायें तो वहाँ आपको बैठने का मन होगा ? तो चेतन वहाँ किस तरह बैठेगा ! उसका अधिकार, भूमिका होनी चाहिए । कि शरीर के जल और पृथ्वी तत्त्व में नहीं है वह ।

क्योंकि .... उसका दूसरा भी कारण है । हम लोग बुद्धि से ज्यादा सोचते नहीं लोग । भगवान की कृपा से मुझे और

आपको निमित्त है। कि जल और पृथ्वी तत्त्व वह भोग तत्त्व है। जल और पृथ्वी तत्त्व के सिवा कोई भी कुछ भोग नहीं सकोगे। Impossible। देव को भी मनुष्ययोनि ही लेनी पड़े, भोगने के लिए।

यह सब शास्त्र पुराण बोला करते हैं, वह गलत हैं। जल और पृथ्वी तत्त्व के सिवा कहीं कुछ भोग नहीं सकते। तब यह भोगयोनि है। जल और पृथ्वी तत्त्व वह भोग है। वे अनेक प्रकार के भोग भोगते हैं। एक प्रकार के नहीं। अनंतानंत वृत्तियाँ, अनंतानंत कर्म। वह सब भोगा हो वह भूमिका कैसी हो ?

तो आप चाहे जितनी भक्ति में ऊँचे हो, किन्तु जल और पृथ्वी तत्त्व दोनें में से खिसकना बहुत कठिन। क्योंकि उसे जो असर हुआ है। क्योंकि मूल ..... मूल धर्म कि आकाश का धर्म शब्द। कि उसमें से दूर हो ही नहीं। तेज का रूप दूर हो नहीं। जल में रस और पृथ्वी में से सुगंध*। ये दो जेसै दूर ना हो उस तरह इस जल और पृथ्वी तत्त्व के कारण ही आप भोग सकते हो। उसका निर्माण पूरा।

अब वह निर्माण से अलग होना चाहिए। या तो वह निर्माण बंद हो जाना चाहिए। इससे यह बहुत कठिन है। उसकी पूरी natural रचना है। उसका constitution है। वह

---

* गंध। पू. मोटा के उच्चार में सुगंध शब्द होने से ऊपर वह शब्द है। सही में गंध या वास शब्द है।

नेचरल श्वासोच्छ्वास है कि अपना कुदरती निर्माण । अब वह बंद हो जाय या समाधि अवस्था हो जाय, उस समय में कुछ समय समाधि रहे बराबर की शून्यावस्था की स्थिति में रहे ।

• योग की भाषा में संयम •

या तो प्राणायाम में अमुक प्रकार का होता है । वह तो संयम की स्थिति में । संयम हम यह भाषा बोलते हैं, उसमें नहीं हं...अ... भाषा में संयम बोलते हैं वह नहीं । योग की भाषा का संयम ।

जिज्ञासु : निरोध जिसे कहते हैं ।

श्रीमोटा : हाँ । वह अलग संयम हं...अ... वह उसका अलग शब्द मुझे आता नहीं है । तब यह पूरा उसका यह श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया बंद हो जाय । पूरेपूरी । नाड़ी-बाड़ी भी चले नहीं । बिलकुल । वह एक ऐसी स्थिति हो तब । किन्तु उस स्थिति में आने पर ये आकाश, तेज और वायु में से.... पृथ्वी और जल जड़ है । क्योंकि inertia भी है उसमें । जल और पृथ्वी में बहुत inertia है और दूसरा भोग तत्त्ववाले । वह भोग तत्त्ववाले उसने अनेक भोगे । वह उसका स्वभाव ही वह । दूसरा स्वभाव ही नहीं । वही स्वभाव । इससे वहाँ आकर वह अटक गया । वह उतरता नहीं उसमें ।

अब उसका अर्थ कि नहीं निकलेगा ऐसा नहीं कह सकते । क्योंकि दूसरे पाँच तत्त्ववाले ऐसे हमारे मनुष्य हैं । अनेक हैं । वहाँ पर उतरे हुए हैं वैसे हैं ।

किन्तु मूल वस्तु ये विरोध करनेवाले तत्त्व हैं। किन्तु प्रारंभ के समय में नहीं। प्रारंभ में तो आपकी मंदाग्नि है। यही मूल बात है। सचमुच आपको वह तीव्र अभिलाषा हुई ही नहीं। वर्ना आप तीव्र अभिलाषा- तीव्र अभिलाषा हुई हो तो एक साधन को पकड़ कर आप स्वयं ही परीक्षा कर लो। एक साधन को पकड़कर कितने समय तक आप टिक सकते हो। तो आप समझ लो आपकी लायकी है।

• स्वार्थ की सभानता की तरह सद्‌गुरु की सभानता प्रत्येक कर्म में रखो •

और ये सब सद्‌गुरु की बात करते हैं, वह मेरे गले उतरती नहीं है। सद्‌गुरु की बात सच है। ठोस है। हवा की तरह ठोस है। तेज की तरह ठोस है। हमारी हस्ती है, उससे भी ठोस है। किन्तु उसमें दिन में चौबीस घंटे। उन चौबीसो घंटे हमारा अभ्यास कहाँ है? .... आपको किसी भी ऐसे संयोगों में रहेगी, रहेगी और रहेगी। या चली जाती है ? बोलो आप। आपके संसार-व्यवहार में देखो आप।

जिज्ञासु : रहती है।

श्रीमोटा : कि स्वार्थ की awareness आपको रहती है। किन्तु उतनी awareness आपके संसारव्यवहार में काम करते भगवान की रहती नहीं है। तो आप समझ लो कि अभी इसके लिए हमारी अभी पक्की भूमिका नहीं है। इसलिए अभ्यास

अभी पक्का ज्यादा किया करो । कि दो घंटा रखो, तीन घंटा रखो, साढ़े तीन घंटा बढ़ाया करो । ऐसा करके बराबर उसका तो उसमें headlong कूद पड़ो ।

हाँ । उसका काम करे वह उत्तम है । हं...अ... हालांकि मेरी ना नहीं है .... यह तो science है । जैसा जो हो वह सच बात करना । किन्तु वह उसे आप मन में जो रखो । उसका काम सब करो । उसका करते हो, किन्तु वह मन में उस समय हरपल जीवित ना हो कि किया हुआ काम अच्छा है । अब उसकी कद्र भी वह तब किया करे । किन्तु मन में वह जीवित होना चाहिए । और हो तो उत्तम है । वह फलदायी है ।

और वह **उसका काम जो करते हों, वह काम नहीं, किन्तु उसके स्मरण को अपने में जीवित जागृत चेतनात्मक रूप से रखने के लिए ये करते हैं ।** आपको समझ में आता है । इसमें ?

• सद्‌गुरु का स्मरण रखने के लिए उपाय •

जिज्ञासु : हाँ । बिलकुल सच बात है ।

श्रीमोटा : यह मेरे स्वयं के समर्थन के लिए नहीं कहता .... कहता हूँ । तो ऐसा करनेवाले कितने ?

तो शुरूआत के समय में तो बिलकुल मनुष्य की मंदाग्नि । और मंदाग्नि को फिर मंदाग्नि हो उसका भी हरज नहीं । किन्तु उसका निर्णय करके कैसे भी मर जाँय तो भले ।

कि खाऊँगा नहीं और पानी भी नहीं । किन्तु ढाई घंटा तो करना । पंद्रह दिन में पा घंटा जोड़ो । वैसा करते-करते आपकी वृत्ति को बढ़ा सकते हो । कि आपको उसमें आगे बढ़ना है । यह निश्चय पक्का चाहिए । और निश्चय को अमल में लाना पड़ेगा तो कहते हैं यह सब है न । सब चलता है । कहीं कुछ अटकता नहीं है । हिमालय के जंगल में रहकर मैंने नहीं किया है । अभी मेरी बड़ी भाभी है ..... और जवाबदारीवाले काम किये हैं ।

मेरे गुरुमहाराज कहे ये ठक्करबापा की प्रस्तावना ले । मैंने कहा, ठक्करबापा की प्रस्तावना लेकर क्या करना ?

भगवान के मार्ग पर जाता हो तो कर्म किस तरह से करना उस पर मैंने पत्र लिखे थे, हेमंतभाई को और नंदुभाई को । वे 'कर्मगाथा' बाद में लिखी । उन्होंने लिखा हो, वह मुझे आज उपयोग में आता है । वह लिखा है । मेरे बारे में लिखा है उन लोगों ने । परीक्षितलाल की ली थी रविशंकर महाराज ने । मैं तो .... मुझे खास मन नहीं होता । किन्तु उन लोगों के कहने से कि **मोटा** ऐसा काम करते थे । **तो काम का एतराज नहीं है । काम वह बाधारूप नहीं है । वह तो आपकी करने की ज्योत नहीं जली हुई है ।**

• नकारात्मक वृत्तियाँ उठे उस समय प्रार्थना, भजन, स्मरण करो •

जिज्ञासु : ऐसा सही है कि जिसे असद्‌वृत्ति के हमले कहते हैं, वे हमारी ही प्रकृति का कोई परिणाम हो सकता है ?

श्रीमोटा : नहीं । आगे जाते हुए ऐसा कुछ नहीं होता । आगे जाते उदाहरण के लिए चौदह भूमिका लें ..... कोई वृत्ति आ गई तो उसका दोष नहीं । तो उसके चित्त में संस्कार पड़े या नहीं पड़े ? और ऐसी वृत्तियाँ होती हैं उसके सामने जागृत रह सके और उसे रोक सकूँ यानी कि उसे resist नहीं करना ।

उस समय जब वृत्तियाँ जागृत हो, तब या तो भजन में जाना, या तो स्मरण करना, या तो प्रार्थना करना, या तो ध्यान में जाना । उस तरह आगे बढ़ना । **उस समय आप उसको resist करोगे तो तो गलत बात । क्योंकि वह तो जितना resist किया आपने । क्योंकि वह तो प्रकृति का विषय है । संस्कार, वृत्तियाँ होना वह प्रकृति है । तब आप प्रकृति का सामना प्रकृति से करोगे तो नहीं चलेगा । उसका सामना करना हो तो उससे ऊर्ध्व पर चढ़ो ।** कि उस समय मैं प्रार्थना करूँ । भजन गाऊँ । ध्यान करना ऐसे साधन मैं करता और फिर प्रार्थना करता । तो फिर सहज हो । उसके साथ ..... कर दो । किसी भी तरह । इस जीवन की हमारी भूमिका पर ।

• *मोटा* के पैर में पड़नेवाले *मोटा* का काम करे तो सच्चा पैर में पड़े •

आप काम करो । काम करो । अच्छा काम करो आप साहब । आप इतना बोलते रहोगे वह नहीं चलेगा । मैं इसलिए कहता हूँ कि मेरा काम है, इसलिए नहीं हं...अ... । उदाहरण

के लिए ये मेरे इन्दु* के घर पर पूरा कमरा भर गया है । मेरा विचार है कि किताबें बिक जाय । **तो पैर में पड़ते हो और ये सब करते हो कि बेचना । मेरी मरजी सही । तो आपका भाव है ऐसा सिद्ध होगा । बाकी गलत बात । ये पैर में पड़ते हो वह गलत लगते हो । यह दंभ है एक प्रकार का । मैं sincerely ऐसा मानता हूँ ।**

आप यदि सचमुच कहते हो तो उसके लिए मान सम्मान हो और पैर में पड़ते हो तो इतना काम करो । किन्तु वह .... वह करते नहीं । किन्तु आप उसे यदि उसका लाभ लेना चाहते हो तो सक्रिय रूप से उसका काम करो । और काम करते समय उसकी सभानता रहनी चाहिए । और सभानता के समय उसका आपका जो हेतु हो वह भी साथ चाहिए ।

आपके संसारव्यवहार में कोई व्यक्ति है । बिलकुल खराब में खराब । जिसे देखना पसंद न हो ऐसा । उसके साथ स्वार्थ हो तो सब दूर कर देते हो या नहीं ?

• *मोटा* का काम *मोटा* को स्वयं में जीवित करने के लिए करो •

क्योंकि आपका स्वार्थ predominant होता है । उस तरह इसमें भी यदि हमें उसके पास से जीवन का उत्तम से उत्तम

---

* श्री इन्द्रवदनभाई शेरदलाल, गुरुकृपा गेस्ट हाउस, टाउन हॉल के पीछे, एलिसब्रीज, अहमदाबाद - ३८० ००६.

लाभ लेना है । जैसे-तैसा नहीं । **उत्तम से उत्तम लाभ यदि लेना हो तो वह लाभ लेने की sense को जीवित रखनी पड़ेगी । ऐसे ही नहीं चलेगा साहब । और उसे जीवित रखकर उस हेतु की सभानता रख कर... x, y, z की या उसके स्वरूप की या जो कुछ कल्पना हो आपके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण के अंदर रहती हो वैसी सभानता रखो । और उसको मेरे में जीवित करने के लिए यह कर्म करता हूँ । नहीं कि *मोटा* को मदद करने के लिए और आप नहीं होंगे तो भी *मोटा* को मदद हो जाएगी ।**

अभी तक में लाखों के काम हुए हैं । कितने सारे पैसे मिले है न ! वे सब x, y, z ने ही मदद की है न ! वह तो हजार हाथवाला मालिक करेगा । और नहीं होगा उसका कोई हरज नहीं । ये करते हो, वह आपके स्वयं के स्वार्थ के लिए करते हो । आपके स्वयं के कल्याण के लिए करते हो । और उसे *मोटा* को इसके द्वारा मन में जीवित करना है .... जीवित जागृत भाव ..... जैसा आपका तो आपको देखो ।

यह प्रयोगात्मक विषय है । आपने एक मणिनगर में मेरे लिए एक प्रार्थना लिखी थी । वह भाव भी सही है । सब कुछ अच्छा है । किन्तु एक बार मेरे में fancy आई, mood आया और आपने लिखा । यह नहीं चलेगा साहब ! यह कुछ मेरा गलत नहीं है । मेरा कहना सच है या नहीं ?

जिज्ञासु : सच । सच ।

• *मोटा* का काम *मोटा* की भावना जगाने के लिए करो •

श्रीमोटा : और गलत हो तो मुझे कहो । आप तो शास्त्र पढ़े हो ।

जिज्ञासु : हकीकत में यह टिकाये ही है । मुझे स्वयं prestige का ऐसा नहीं है । भाव को टिकाये रखने के लिए आखिर में मुझे वह साधन लगता है । कई बार .... जैसे आप कहते हो और कुछ भी काम करें हालांकि काम यह तो कुछ हम कोई गुरु का या ऐसा कुछ नहीं है । काम हमारे स्वयं के विकास के लिए करते हों तो कर देना चाहिए । कि कुछ हमें प्राप्त करना हो तो कुछ प्रयत्न तो करते ही रहना चाहिए न ?

श्रीमोटा : करना ही चाहिए ।

जिज्ञासु : फिर यह प्रयत्न इस भाव को टिकाये रखने का !

श्रीमोटा : साधन है । उस तरह किया । ऐसा कहता हूँ । आप कहते हो वैसा ही मैंने कहा कि काम सिर्फ काम के रूप में नहीं, किन्तु हमारे भाव को उसके संबंध के आकर्षण को जीवित-जागृत रखने के लिए ही है ।

जिज्ञासु : अब मानो की कोई व्यक्ति हो, और उसका काम करने की इच्छा रखें । तो उसका अर्थ यह कि उसके और हमारे बीच एक सद्‌भाव टिका रहे वह ही ....

श्रीमोटा : वही, वही, वही ख्याल में रखना चाहिए । वही मैंने कहा । वही कहा मैंने ।

जिज्ञासु : ..... किन्तु उसमें भी मनुष्य की प्रकृति की मर्यादा होती है । कितनी सारी कि शायद उस मार्ग पर जाता नहीं है । स्वयं वह रख भी देता है । तो इस मार्ग में भी स्वयं की प्राकृतिक मर्यादाओं से मनुष्य इतना बँधा हुआ है कि उसकी sincerity हो, अभिप्सा भी हो, किन्तु वह लक्ष्य में बहुत आता हो ऐसा लगता है ?

श्रीमोटा : ..... जब आपने गरज करके उसके संबंध की । उसके बारे की ..... वह परिस्थिति आई । उस परिस्थिति को किस हेतु से ? किस समझ से आप स्वीकार करते हो, उसके पर बड़ा आधार है और विचार तो सच में जाते ही नहीं रहते । शास्त्रसंमत विचार हम करें, उस तरह यदि उसे लें, स्वीकार करें, तो विचार जाते नहीं हैं ।

• गीता के श्लोक की समझ •

जिज्ञासु : यह आपने गीता में कहा .....

श्रीमोटा : .....

विचार किस तरह होता है ? क्यों होता है ? उसके लिए मूल पर आना पड़ेगा हमें । यदि विचार जगानेवाली वस्तु हो तो भी वह किसे जगाती है और किसे नहीं जगाती वह फिर पृथक्करण करना पड़े हमें । हरएक को विचार नहीं जगाता

है । चाहे जिसको नहीं जागेगा । अग्नि होती तो सब को गरमी लगेगी । ऐसा इसमें नहीं होगा । ऐसा विचार में नहीं होगा । सब को विचार नहीं जगायेगा । जिसमें उस प्रकार की वृत्ति है । अर्थात् एक प्रकार की भूमिका है, उसे वह शुरूआत कराता है । सिर्फ शुरूआत कराये किन्तु फिर उसे सक्रिय बनाओ किसी साधन द्वारा । तो वह सक्रिय होगा । सिर्फ आपको विकास कराने के लिए ही पैदा कराता उतना ही । तो विचार हुआ तो आपको जगा दे वैसा नहीं ।

कृष्ण भगवान ने अर्जुन को उपदेश ..... उस समय पर अर्जुन कहते हैं कि **'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा ।'** (गीता १८/७३) तो यहाँ पर स्मृति यानी कहते हैं Consciousness of the Divine । वह स्मृति आपकी स्मृति नहीं और मोह यानी कि प्रकृति के संबंध में सर्व प्रकार की मनोवृत्ति हमारी लय हो जाय । भगवान की भक्ति में । **नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा** कि भगवान की स्मृति उसे होती है, तब **करिष्ये वचनं तव** (१८/७३) । तब वचन की शरणागति उस में आई । शरणागति जागे तब ये हो जाय । उसकी व्याख्या यह है । तो उसकी सभानता जागे बिना संसारव्यवहार में भी किसी के साथ हमें प्रेम हो जाय उसकी बात करता हूँ । हमें कुछ उसके लिए अच्छा भाव हो या तो हमारे लिए वह बहुत उपयोगी व्यक्ति हो । संसारव्यवहार में बहुत उपयोगी । तो ही उसका काम करते हैं हम साहब । वर्ना ना करो साहब ।

• भगवान के साथ संबंध बाँधने के लिए साधन करो •

उस तरह भगवान को भी ऐसा ही है । वह यदि हमारा लग जाय .... किन्तु जब उसके सगापन का जब हमें पता लगे उसके उपयोग का । कितना बड़ा उपयोगी है हमें ! और जीवन का सर्वस्व है अपना । वैसा इस गले में से बोलना वह नहीं, किन्तु reality यह । तत्त्व ही यह । ऐसा हमें लगे, तब साहब उसके साथ का– उसके साथ की बातचीत । आज ही एक भजन लिखा गया है ।

हरि के पदकमल की ..... बादशाही

अरे ! वह बादशाही भी सचमुच तुच्छ है, उसके पास । यह भक्त गा सकेगा । क्योंकि आपस में उसका मिलन हो गया है । सगापन हो गया है । उसके साथ । ऐसी उसके साथ की relationship जुड़ जाय न ..... किन्तु वह तो कुछ ऐसे ही जुड़ नहीं जाएगी साहब ।

इससे कोई साधन करना और उस साधन को पकड़ कर लगातार उससे जुड़ा रहना । कुछ भी उपाय करके । मैंने Planning किया था, कि प्रतिदिन ढाई घंटे लेना शुरूआत में । फिर प्रत्येक पंद्रह दिन में दस दस मिनट बढ़ाना । खाना भी नहीं और पीना भी नहीं । जिस दिन नहीं लिया गया, उस दिन खाना भी नहीं और चाय भी नहीं पीना.....

जिज्ञासु : स्मरण और भजन ।

श्रीमोटा : नहीं । स्मरण तो सही ही फिर भी.....

जिज्ञासु : स्मरण और भजन ।

श्रीमोटा : भजन भी किया करता था । किन्तु वह पसंद नहीं था । भजन में पसंद नहीं था ।

● ● ●

श्रीमोटा : मेरे जीवन में अनेक प्रसंग दिखा सकूँ ऐसा है । खुले रूप से । गरीब मनुष्य को पैसे की तो बहुत ही तंगी होती है । आज मुझे तंगी पड़े तो कि यह मुँगफली माँगने के लिए तो अचानक कहाँ से माँगने लगे ? माँगने का नहीं । इस माता ने मुझे शुरूआत..... एक बार मुझे बीस रुपये रख दिये थे और तब मुझे जरूरत थी । आश्रम में से अमुक समय पर ऐसे .....

अब मुझे ऐसा हुआ कि मुझे आराम लेना है और मुझे रहना है कोडाईकेनाल । किसी आश्रम में । वहाँ आश्रम में आराम है मुझे कुंभकोणम में । वहाँ साहब, मच्छर बहुत । इससे मुझे नींद न आये रात को । अनिद्रा का रोग । ऐसा ही कहो न हम दूसरा तो बोल नहीं सकते । अनिद्रा का रोग इससे नींद न आये और मच्छर काटे । मज़ा नहीं आता मुझे । वह अनिद्रा का रोग और परेशानी ज्यादा ।

भई लालाजी, ले जा मुझे कोडाईकेनाल । कहा कि ले जाऊँगा । किन्तु मैंने कहा खर्च आपका नहीं । वह सेठ लोगों

को ज्यादा पता लगे । किन्तु पचड़ा पड़ा था किसी का । अब उनको तो मालूम नहीं पड़ता । तो यह तो मैं ही पैसे खर्च करूँगा । किन्तु मुझे ले जाओ .... पैसे खर्च करके मुझे ले जाते हैं । सात दिन के ग्यारह हजार रुपये । कोडाईकेनाल भगवान मुझे ले जाना चाहते थे, वे ले जाते हैं । तो मुझे पैसे चाहिए न ! कि आपको पाँच-सात हजार मदद करूँगा । अब उसके दस-बार हजार रुपये कहाँ से लाऊँ ? कहाँ से लाकर देना ? आश्रम में से ..... तो कि ऐसा आपको किस लिए करना ? अब वह तो मेरा प्रश्न है । निजी है साहब । और कोई माँगता हो और मेरी लड़की को मैंने कहा हो, वह मालूम है, इससे देती है मुझे । वहाँ शंका रह जाती है । मेरे साले को करने दो न । वे तो करते ही रहेंगे । **किसी को छोड़ा नहीं है । कृष्ण भगवान को नहीं छोड़ा और किसी को छोड़े नहीं हैं । तो भले न बोला करने दो लोगों को । हम हमारे स्वयं पर दृढ़ रहें तो बस ।**

क्योंकि हमने कुछ रखा नहीं है । ये मेरे पैसे सब खर्च किये । ये मेरे साहित्य के सब दे दिये हैं । यदि उतने रखे होते तो मेरे पास तो तो खूब खर्च करूँ । चाहे जैसे खर्च करुँ । अभी तक खर्च नहीं किये हैं । कहा है न भई, अनेक प्रकार से आप जगत में चाहे जितने सबूत दो, किन्तु वह किसी को

भक्ति लगे बगैर आपको भक्ति लगे बगैर उसका कोई importance नहीं होगा । यह मुख्य बात कहूँ । भक्ति लगे तो ही उसकी आपको उसका importance, उसका महत्त्व आपके दिल में उगेगा । उसके सिवा नहीं उगेगा । सौ प्रतिशत होगा तो भी । किन्तु मैं ऐसा नहीं कहूँ ।

• दूसरों के बारे में सोचना छोड़कर, स्वयं के बारे में सोचो •

भजन में लिखा है, 'अबे, हम कैसे हैं । आप क्यों फिक्र करते हो ? आप कैसे हो, उसकी फिक्र करो ।''

हम कैसे हैं, उसकी फिक्र लेकर क्यों आप घूमा करते हो ? आप कैसे हो यह तो विचार करो । तो कोई नहीं करता है विचार । मनुष्य दूसरों के बारे में ही विचार करता है । यदि मनुष्य विचार करे, मनुष्य यदि विचार करे तो स्वयं के बदले दूसरों के बारे में ही ज्यादा से ज्यादा विचार करता होता है । यदि मनुष्य यदि विचार करे, पृथक्करण करके देखे तो स्वयं के बदले दूसरों के लिए ही ज्यादा से ज्यादा ही विचार करता होता है । तो नहीं काम चलेगा ।

आपको इस मार्ग पर जाना है तो ये सब छोड़ना ही पड़ेगा । नहीं चलेगा । वह तो कहे नहीं है । तो मैं तो कहूँ रहने दे भई । माथापच्ची मत करो । धीरे-धीरे अभ्यास करो । और यह वैराग्य ऐसे ही नहीं आता है ।

• अभ्यास और वैराग्य •

अभ्यास और वैराग्य गीता में कहे सही । वैराग्य तो किसी को फूट निकलता है । प्रह्लाद जैसे को, ध्रुव जैसे को । हमें मेरे आपके जैसेको नहीं आएगा । अभ्यास का सातत्य हो तो वैराग्य फूटता है । वह भी मैंने लिखा है । अभ्यास की सातत्यता से वैराग्य फूटता है । किन्तु वैराग्य तहाँ तक नहीं आएगा । यह सब मिथ्या है ऐसा नहीं साहब । वैराग्य यानी यह सब मिथ्या है ऐसा नहीं । **किन्तु वैराग्य का अर्थ मैं ऐसा कहता हूँ कि निष्काम, निर्मोह, निरहंकार । यह सब इकट्ठा करके एक समटोटल एक सूक्ष्म एनर्जी है ।** उसमें निष्कामता संपूर्ण, निर्मोह, निर्लोभ, निरहंकार, निराग्रह ऐसा सभी इसमें इकट्ठा है । इन सब का *समटोटल* एक सूक्ष्म से सूक्ष्म ऐसी जो *एनर्जी* वह वैराग्य । यह तो मेरी समझ । मैंने इस प्रकार तब यह तो उस प्रकार की वैराग्य की भावना तो तुरंत फूटे नहीं वह ।

जिज्ञासु : गीता में तो ऐसा कहा है कि अभ्यास करने से वैराग्य तो सिक्के का दूसरा पहलू है ।

श्रीमोटा : हाँ, ऐसा करते-करते हो जाय । वह करते-करते आता है । मैंने कहीं लिखा है सही ।

जिज्ञासु : लिखा है ।

श्रीमोटा : हाँ, जी ।

जिज्ञासु : .....

.... कि
भई, ये वैराग्य यानी अलग कुछ दूसरा नहीं है। किन्तु अभ्यास करते-करते ही यह सिक्के की दूसरी तरफ आपका वैराग्य धीरे से छप जाएगा।

श्रीमोटा : छप जाएगा।

जिज्ञासु : अब वह जो अभ्यास पर ही कहता है।

श्रीमोटा : वैराग्य आये इससे भगवान में हमारा चित्त ज्यादा से ज्यादा जुड़ा हुआ हो तो जुड़ा हुआ रहे। ये जो सब गलत है ऐसा नहीं। ये सब मिथ्या है ऐसा नहीं।

• सर्वारंभपरित्यागी का अर्थ •

जिज्ञासु : सर्वारंभपरित्यागी जो कहते हैं अर्थात् सर्वारंभपरित्यागी यानी किस तरह का त्याग ?

श्रीमोटा : यह जो उदाहरण के लिए हमने यहाँ काम कुछ किया हो तो हम संसारी आशा, इच्छा के बगैर शुरूआत होती नहीं। क्योंकि ..... **किन्तु उसे जो कर्म करने का है, वह कर्म और जो भक्त है, ज्ञानी है, योगी है, उसे तो भगवान के सिवा बात ही नहीं, कर्म में पलपल पर जीवितजागृत alert भगवान अग्रभाग में हैं। उसे कर्म अग्रभाग में नहीं है।**

जैसे हम हमारे गुरु की चेतना की भावना हमारे में जुड़ने के लिए कर्म है। हमारे लिए। उस तरह उसको जो कर्म है,

वह कर्म तो अनुभवी को निमित्त के कारण ही है । कर्म की कोई स्वतंत्र उसके मानस में कोई व्याख्या या समझ है नहीं । निमित्त के कारण– कर्म निमित्त के कारण ही है ।

तो निमित्त वह आरंभ हुआ न ? ऐसा कोई कहेगा न ? 'निमित्त' वह भी आरंभ हुआ न ? तो हम उसके विज्ञान की साहब, बात करें ।

कि realization जो stage है । वह realizationकी stage वह चेतन की stage है । और उसमें आदि नहीं और अंत भी नहीं । वह हमने जैसे कहा न भूमिति ..... कि भूमिति है । उसे ऐसे सीधी लकीर । उसे breadth नहीं है । किन्तु हम बोलते है सही । किन्तु हमारे conception में ।

जिज्ञासु : .... ऐसा कहा वह हम *एक्सीअम* के रूप में हम ले लेते हैं ।

श्रीमोटा : हाँ । ऐसा होता है । यह तो कुछ ..... भगवान की बाबत में उसे आदि नहीं और अंत भी नहीं । किन्तु हम जब ..... जब कुछ सोचने बैठें, तब हम स्वयं की प्रकृति हो उसी तरह सोचेंगे न ! आदि अंत लाये बगैर हो ही नहीं ।

तो उसका विचार करो । आपने जो गीता में लिखा कि उसे (अनुभवी को) कोई आरंभ नहीं है । अनारंभ है तो उसकी जो मानसिक स्थिति है उसका विचार करो । उस समय में वह जो Divine Consciousness की स्थिति में है, उसे कोई

आरंभ नहीं और अंत भी नहीं । इससे उसने ऐसा लिखा, तब निमित्त है । निमित्त उसका एक.....

वह निमित्त का गुलाम भी नहीं साहब । अनुभवी पुरुष निमित्त का गुलाम नहीं है । निमित्त में है तो सही वह । वह परिस्थिति का भी गुलाम नहीं, अनुभवी । किसी भी परिस्थिति का वह गुलाम नहीं है ।

तब..... इससे उसका जब हम गीता ने कहा उसका विचार जो करें तब वह परिस्थिति चेतन का ..... चेतन की psychology..... हो ही नहीं । psychology की बात करना वह मूर्खता होगी । किन्तु यह तो हम जीवदशा में एक समझने की दृष्टि से कहते हैं कि उसे यह है । उस स्थिति में आरंभ भी नहीं और अंत भी नहीं कोई ।

इससे फिर उसे जिसे आरंभ ही नहीं है, उसे अंत कहाँ से हो ? सर्वारंभपरित्यागी । दिखता सही आरंभ करनेवाला मनुष्य जगत में । किन्तु उसे कोई आरंभ नहीं उसे । क्योंकि उसे तो पूरा उसका मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, पल-पल एकतार सतत **उस**के साथ ही बँधे हुए हैं । उसकी (अनुभवी की) awareness (भगवान के बारे में) अखंड है । वह किसी काल में टूटे ही नहीं बिलकुल । जैसे अभी हमारा-हमारा जीवन है, किन्तु उसकी हमें awareness नहीं है । हम खाते हैं, पीते हैं, सब करते हैं, कामकाज करते हैं, पैसे कमाते हैं, घर-बार, बाल-बच्चे सब चलाते हैं, किन्तु वह जीवन के लिए । किन्तु

उस जीवन की उसकी कोई awareness हमें है नहीं । एक भेड़चाल की तरह ज्ञान की बातें भले न सब करते हों । इसकी (जीवन की) किसी प्रकार की awareness नहीं होती है । जब कि उसको (अनुभवी को) ऐसा नहीं है ।

जिज्ञासु : निष्क्रिय जाने का कोई ..... नहीं वह ।

श्रीमोटा : नहीं ।

जिज्ञासु : ..... जिस वस्तु का आरंभ ही न करना चाहिए इससे ।

श्रीमोटा : वह तो हो नहीं सकता । क्योंकि चेतन ही पल-पल सक्रिय है ।

• गीता के श्लोक का अर्थ •

जिज्ञासु : *मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव । (१६/५)*

अब चित्तशुद्धि के बगैर तो मोह, आसक्ति इत्यादि हो, वहाँ तक चित्तशुद्धि हुई नहीं कह सकते । अब .....

.....

तो सोलहवे अध्याय में श्रीकृष्ण ऐसा कहते हैं कि तू शोक मत कर । तू दैवी संपत्ति लेकर आया है । तो दैवी संपत्ति का अर्जुन को उस समय कहाँ से उदय हुआ ?

श्रीमोटा : उसका कारण है हम सब **जीव**दशा में हैं । ये जो श्रीकृष्ण भगवान ..... सम्बन्ध में

बात करते हैं, वह बात की है। हम सब **जीव**दशा में हों, उसमें भी कोई समय पर आप यदि सोचो तो कितने सुंदर भावना के विचार हमें आते हैं।

जिज्ञासु : हाँ..... हाँ..... हाँ.....

श्रीमोटा : सुंदर। उस समय आप एकाग्र भी हो जाते हो। भले थोड़े पल हो। किन्तु वह पूरे जीवन में किसी को किसी समय शायद ऐसा हो सकता हो, किन्तु होता है। प्रत्येक के।

जिज्ञासु : हाँ। हाँ। हाँ।

श्रीमोटा : हरएक के जीवन में। और मूल हम देखें तो हम मूल में तो ..... हैं। उसमें तो चेतन ही है। और क्यों ऐसे-ऐसे क्यों दिखते नहीं, यह दूसरा सवाल है फिर।

जिज्ञासु : हाँ। वह दूसरा।

श्रीमोटा : वह तो बाद में किन्तु मूल में तो एक ही है। यानी वह जो ये ..... के लिए झंझट ..... होने की जरूरत नहीं है भई। दैवी संपत्ति लेकर ही आया हुआ है इससे हम भी। हमें ही कहते हैं वे। भगवान हमें कहते हैं, कि इन सब में तू। इन सब में क्यों मोह हुआ ? इन सब में क्यों तू डूबा ? जान बूझकर ही तू स्वयं दुःखी होता है।

॥ हरिः ॐ ॥

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवानकेअनुभवकास्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat. January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019

●

॥ હરિ:ૐ ॥

चेतन की सभानता के लिए कोई साधन करो

तो चेतन की सभानता हमारे में रहे इसके लिए या तो एक साधन करो और उस साधन में कितने काल तक आप टिके रहेते हो उसका अभ्यास करो । आपको यदि लगे कि दिन के चौबीस घंटे में चार घंटे तक भी उस साधन में आप टिक रहे हो । तो उस मनुष्य के लिए संभावना है । आगे बढ़ा सकेगा बाद में । समय उसे बढ़ाते जाना चाहिए । पंद्रह, सोलह घंटे तक आप ले जाओ । बाकी का काम भगवान करेंगे या सद्‌गुरु आपके करेंगे । फिर आगे शक्ति नहीं है अपनी । दूसरे किसी की होगी । मेरी नहीं है ।

मैंने यह अनुभवपूर्वक समझ समझ कर, दिमाग में बुद्धि दौड़ा कर मैंने किया । पंद्रह, सोलह घंटे तक ले गया था । फिर मेरे जाने का संभव न था । बहुत प्रार्थना भी की है । बहुत मथन किया है । अलग-अलग साधन गुरुमहाराज ने बताये थे, वे करके दिखाये हैं । ऐसा नहीं कि नहीं । करके दिखाकर उसके परिणाम सहित जानकर पक्का करके ये किया है ।

– श्रीमोटा

'श्रीमोटावाणी-५', प्र. आ., पृ. २१

किंमत : रु. १०/-